(टाड-कृत)

राजस्थानका इतिहास।

राजपूत जातिका वृत्तान्त।

पहला अध्याय।

राजस्थान, सूर्य और चन्द्रवंश, पौराणिक वृत्तान्त।

कुरुक्षेत्रकी महासमरभूमिमें जो वीरपूज्य आर्यनृपतिगण वीरगतिको चले गये थे भविष्यमें उन्हींके वंशमें उत्पन्न होनेवाले लोग "राजपुत्र" कहलाये। "राजपूत" शब्द इसी राजपुत्रका अपभ्रंश है। भारतवर्षका जो विशाल प्रदेश इस राजपूत जातिकी निवासभूमि है उसका शुद्ध नाम "राजस्थान" है। प्रचलित भाषामें उस देशके लोग इस राजस्थानको "रजवाड़ा" और सीधी सादी बोलचालमें "रयथाना" कहते हैं। वर्तमान समयमें अंगरेजोंने राजपूत-राज्यका परिचय देनेके लिये जो 'राजपूताना" नाम बना लिया है वह "रयथाना" शब्दका अपभ्रंश मात्र है।

जिस समय प्रचण्ड मुसलमान वीर शहाबुद्दीनने भारतवर्षको अधीनताकी बेड़ीमें जकड़ लिया था उस समय राजस्थानकी सीमा कहांसे कहांतक थी इस बातका अनुमान एक प्रकार कर लिया जा सकता है। कदाचित् उस समय इसकी सीमा गङ्गा और यमुनाको पार करके ऊंची ऊँची चोटियोंवाले हिमालय पर्वतके नीचेतक पहुंच गई थी। परन्तु इस भारतविजेताके भारतमें आनेसे पहले राजस्थानकी सीमाका कितना विस्तार था इस विषयका अनुमान करना इस समय अत्यन्त कठिन है। प्राचीन धारा नगरी और अणहिलवाड़ाके विध्वस्त होनेके पश्चात् जिस समय मुसलमानोंने इन दोनों नगरोंकी भूमि पर मांडू और अहमदाबाद नामक नगर बसाये, उस समय राजस्थानकी सीमा कितनी विस्तृत थी सो आगे मालूम होगा। उस समय राजस्थानप्रदेश उत्तरमें शतद्रुकी दक्षिण मरुभूमि, पूर्वमें

बुन्देलखण्ड, दक्षिणमें विन्ध्य पर्वत और पश्चिममें सिन्धुनदकी बालूमयी लम्बी चौड़ी तीरभूमि तक फैला हुआ था। अब आगे यह लिखा जाता है कि इस विशाल देश में राजपूतनामक जो वीरजाति वास करती थी उसकी उत्पत्ति किस वंशमें हुई।

सूर्य और चन्द्रवंश संसारके दो अति प्राचीन और प्रसिद्ध राजवंश हैं। सूर्य और चन्द्रवंशसे पहले भी भारतवर्ष अथवा संसारके और किसी भागमें कोई राजवंश प्रतिष्ठित हुआ था या नहीं, इसका विवरण जगत्‌के इतिहासमें कहीं नहीं मिलता। चीन असीरिया और मिश्र इन तीन प्राचीन राजवंशोंका वृत्तान्त मिलता है, परन्तु ये तीनों भारतमें सूर्य और चन्द्रवंशकी प्रतिष्ठा होनेके बहुत दिन पश्चात् अपने अपने देशमें प्रतिष्ठित हुए। सो, येन्दो वृहत् वंश संसारके अन्यान्य प्राचीन राजवंशोंमें सबसे प्राचीन है। भगवान् सूर्यके पुत्र मनु सूर्यवंशके और भगवान् चन्द्र के पुत्र बुध चन्द्रवंशके प्रतिष्ठाता हैं। इन दोनों महापुरुषोंने ठीक एकही समय अपने अपने विशाल वंशवृक्षको इस पुण्यभूमि भारतक्षेत्रमें रोपित किया। परन्तु विशेष विचारपूर्वक देखनेसे बुधदेवकी उत्पत्ति भगवान् मनुसे एक पीढ़ी बाद माननी पड़ेगी; क्योंकि उन्होंने मनुसे एक पीढ़ी पश्चात् उत्पन्न होकर उनकी कन्या ईलाके साथ अपना विवाह किया था। पुराणादि ग्रन्थोंमें भारतवर्षके जिन अन्यान्य राजवंशोंका वर्णन मिलता है वे सब इन्हीं दो बड़े बड़े वंशोंकी शाखाप्रशाखाएं हैं।

किस समय सूर्य और चन्द्रवंशके नृपतियोंके आदिपुरुषोंने पहलेपहल भारत-भूमिमें पदार्पण किया, इसका पता लगाना एकदम दुस्साध्य है। प्रसिद्ध पौराणिक ग्रन्थोंमें इस विषयमें जो कुछ हाल मिलता है उसके पढ़नेसे केवल इतनाही विदित होता है कि सूर्यकुलके प्रतिष्ठाता भगवान् मनु सातवें मन्वन्तर † में हुए थे। इसी

---

† एक मनु जितने समयतक प्रजापालन करते हैं उतने समयको मन्वन्तर कहते हैं। जैसे — मन्वन्तरं मनोः कालो यावत् पालयते प्रजाः।
एको मनुः स कालस्तु मन्वन्तरमिति श्रुतम्॥

कालिका पुराण, २७वां अध्याय।

सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि— इन चारों युगोंको मिलानेसे जितना समय होता है उसके इकहत्तरगुण समयका एक मन्वन्तर होता है। देखिये पद्मपुराणमें स्वर्ग खण्डका ३८वां अध्याय—"सत्यं त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चेति चतुर्थकम्। दिव्यमेकयुगं ज्ञेयं तस्य या चैकसप्तति:॥ मन्वन्तरन्तु तज्ज्ञेयं ...."

मन्वन्तर समयका विवरण लेकर संसारके प्रायः सभी आदिसृष्टिग्रन्थ रचे गये हैं, क्योंकि इस सम्बन्धमें प्रायः सब ग्रन्थोंमें एकही बात देख पड़ती है।

कहते हैं कि इसी सप्तम मन्वन्तर कालमें भगवान् वैवस्वत मनु एकदिन कृतमाला नदीके तीरपर बैठे तर्पण कर रहे थे कि इतनेमें एक छोटी मछली जल के साथ उनकी अंजुलियोंमें आ पड़ी। मनुने उसे फिर नदीमें फेंक देना चाहा, परन्तु वह मछली उनको ऐसा करनेसे रोककर बोली—"हे नरोत्तम! मुझे जल में मत फेंको। मैं मगर आदि जलजन्तुओंसे भय खाती हूं, अतएव किसी अन्य स्थानमें रखकर मेरी रक्षा करो।" मछलीका यह वाक्य सुनकर मनुने उसे एक कलशमें रखदिया, परन्तु उसका शरीर बहुत शीघ्र बढ़ गया और वह एक बड़े कलशमें रखनेकी प्रार्थना करने लगी। तब मनुने उसे उस कलशसे निकालकर सरोवरमें डाल दिया। सरोवरमें जाते ही देखतेही देखते उसका आकार इतना बढ़ा कि सारा सरोवर भर गया। उस समय मनुने उसको समुद्रमें फेंका। समुद्रमें भी वह फैलते फैलते एक छोरसे दूसरे छोरतक पहुंच गई। यह देख मनुको बड़ा आश्चर्य हुआ और भक्तिपूर्ण शब्दोंमें उन्होंने कहा, "भगवन्! आप कौन हैं? मुझे वृथा क्यों मायाजालमें फंसा रहे हैं?" मत्स्यने उत्तर दिया—"आजसे सात दिनके बीचमें समुद्र बढ़ते बढ़ते बढ़कर समस्त संसारको डुबा देगा। इस बीचमें तुम प्रत्येक जीव जन्तु लतागुल्मादिका एक एक बीज लेकर सप्तर्षियोंके साथ नावपर चढ़लेना, फिर जब मैं आऊं तब उस नौकाको मेरे सिरसे बांध देना। ऐसा करनेसे तुम्हारी रक्षा होगी।"

इधर भविष्यपुराण देखनेसे विदित होता है कि वैवस्वत मनु सुमेरुपर्वतपर राज्य करते थे, ककुत्स्थ नामक उनके किसी वंशधरने अयोध्यानगरका राज्य प्राप्त किया और धीरे धीरे उसके बालबच्चे उस पहाड़ी देशसे आकर संसारके सब स्थानोंमें फैल गये।

इस पवित्र सुमेरुके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न देशोंके धर्मग्रन्थोंमें बड़ी विचित्र विचित्र बातें देख पड़ती हैं। भिन्न भिन्न धर्मावलम्बी और भिन्न भिन्न सम्प्रदायके उपासकगण अपनी अपनी रुचिके अनुसार इसे भिन्न भिन्न रूपमें वर्णन कर अपनी अपनी × उपास्यदेवताकी आवासभूमि बतलाते हैं। ब्राह्मण इसे वागेश आदीश्वर

× "देवता" शब्द स्त्रीलिङ्ग है।

महादेवका, जैनी जैनाधीश आदिनाथका और ग्रीस देशवाले बेकसका निवासस्थान कहते हैं। जो हो, विशेष सावधानीसे इन विविध मतोंकी परीक्षा करनेसे स्पष्ट ज्ञान पड़ेगा कि इन भिन्न भिन्न व्यक्तियोंकी कल्पना मनुष्यजातिके एकमात्र आदि-पुरुषकेही लिये है, किसी दूसरेके प्रति नहीं। फिर हिन्दुओं और ग्रीस देशवालों-को एकही परिवारका भाई कहते बनता है और इस बातका ठीक निश्चय हो जाता है कि आदीश्वर, आदिनाथ, बेकस, मनु, मनुष और नू ✠ सभी एकमात्र मानवपिताके भिन्न भिन्न नाम हैं, और भगवान् मनुही मानवपिता हैं यह बात जगत्के इतिहासमें * स्पष्ट प्रकट है।

इसी देवस्थान सुमेरु पर्वतको परित्याग कर देवतुल्य वैवस्वत मनुने पुण्यभूमि आर्यावर्त्तमें आकर अपने विशाल वंशवृक्षका बीज बोया। वह वृक्ष क्रमशः असंख्य शाखाप्रशाखाओंसे सुशोभित हुआ और वे सब शाखाप्रशाखाएं धीरे धीरे सारे भारतवर्षमें फैल गईं।

✠ Noah—यहूदी और मुसलमान इस शब्दको नू कहते हैं। तो क्या नू मनुका ही अपभ्रंश है?

* सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता सर वाल्टर रेलेने अपने लिखे "जगत्के इतिहास' में स्पष्ट बतलाया है कि "जलप्लावनके पश्चात् सबसे पहले भारतवर्षमेंही वृक्षलतादि की उत्पत्ति और मनुष्योंकी बस्ती हुई।" अपने मतका समर्थन करनेके लिये उन्होंने जिन प्रमाणोंका अपने ग्रन्थमें संग्रह किया है उन सबको यहां लिखनेसे एक बहुत बड़ी दूसरी पुस्तक बन जायगी अतएव आवश्यकता समझकर एकही अंशका मतलब यहांपर लिख देते हैं। रेले साहब कहते हैं—"मूसाने जिस आरारट पर्वतका उल्लेख किया है वह कभी एकही पर्वत नहीं कहा जा सकता क्योंकि आर्मेनी भाषामें आरारट शब्दका अर्थ पर्वतमाला है, अतएव वह आरमेनियामें न होकर अवश्य कोहकाफके किसी भागमें स्थापित होगा। वह भाग आरमेनियाकी अपेक्षा अधिक गर्म और उससे पूर्व ओर है।"—सर वाल्टरकी बातोंसे आपही प्रकट हो जाता है कि उन्होंने मनुकी आवासभूमि भारतवर्ष और शाकद्वीपके मध्य में बतलाई है।—See Raleigh's "History of the World"

दूसरा अध्याय।

सूर्य और चन्द्रवंशके राजाओंकी वंशावली और इन दोनों वंशोंके एकही समयमें होने या न होनेका निर्णय।

इन्द्रपुरी अमरावती जैसी अयोध्यापुरीमें जिन माननीय आर्य राजाओंने राज्य किया और संसारविदित भगवान् रामचन्द्र जिनके कुलतिलक कहलाये सबसे पहले उनका वृत्तान्त कविगुरु वाल्मीकिने लिखा। उनके वर्णनके प्रभावसे आज भी उन अमरपूज्य राजाओंकी बातें संसार भरकी आंखोंमें विराज रही हैं और आज भी उनकी नामावली प्रत्येक आर्यसन्तानकी जपमाला बनी हुई है। महर्षि वाल्मीकिकी रामायणरचनाके बहुत दिन पश्चात् कविकुलतिलक महर्षि कृष्णद्वैपायनने सूर्यवंशी नृपतियोंका संक्षिप्त विवरण अपने महाकाव्यमें संयुक्त किया। सच तो यह है कि उन्होंने वाल्मीकिप्रणीत रामायणकी छाया लेकरही सूर्यकुलकी वर्णना की, परन्तु दुःखका विषय है कि दोनोंमें प्रकटित सूर्यवंशकी तालिकामें बहुत अन्तर जान पड़ता है। वह भी सामान्य नहीं,—दोनोंमें एकबारही २१ पीढ़ियोंका अन्तर प्रकट होता है।

वैवस्वत मनु सूर्यवंशके आदिपुरुष थे। इन्हींसे लेकर भगवान् रामचन्द्र तक सब मिलाकर ३६ राजाओंका वाल्मीकिने और ५७का व्यासजीने वर्णन किया है। किस कारणसे दोनोंकी लिखी तालिकामें इतनी पृथकता दिखाई देती है इसका जानना कठिन है। जो पुराण आज प्राचीन आर्यगौरवका एकमात्र इतिहास है—जो अन्धेरेमें प्रवेश करनेके लिये एकमात्र मार्ग दिखानेवाले प्रदीपके समान है—उसी पुराणके एक एक अङ्गमें जब ऐसी गड़बड़ पाई जाती है तब भारतके प्राचीन वृत्तान्तका उद्धार करनेके लिये दूसरा कौन उपाय है? परन्तु साथही इस स्थानमें आपही आप यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जो अपने असीम विद्याबलके कारण त्रिकालका हाल जाननेवाले प्रसिद्ध हुए वे क्या भ्रममें पड़ गये थे?—अथवा अपने भविष्यद्वंशियोंको धोखेमें डालनेके अभिप्रायसे उन्होंने यह चाल चली?—नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। वे महापुरुष थे, वे ईश्वरके तुल्य थे। उनके पवित्र हृदयमें ऐसी पाप भरी बुरी प्रवृत्ति और असाधारण भ्रम

की बातें कैसे रह सकती हैं ? वे जो कुछ लिख गये हैं वह सम्पूर्ण और विशुद्ध है। इस पृथक्ताका कारण यह जान पड़ता है कि मूल ग्रन्थके न रहनेसे कापी लिखनेवालोंने कुछ हेरफेरके साथ लिख दिया है। जो हो, इस गड़बड़का कारण चाहे कुछ भी हो, इस विषयकी जाँच करनेकी हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। एकबार विदेहवंशशाखाको इनसे तुलना करके देखना चाहिये, कदाचित् ऐसा करनेसे इस गड़बड़का थोड़ा बहुत पता लग सके।

हमने जिसे विदेहवंश कहा वह सूर्यवंशकोही एक शाखा है। महाराज निमि इसके गोत्रपति थे। ऐसा कहा जाता है कि महाराज इक्ष्वाकुके एकसौ पुत्र थे, उनमेंसे बड़ा विकुक्षि पिताके राज्य पर अभिषिक्त हुआ और निमि तथा दण्डकने मध्यप्रदेशका राज्य पाया। शेष सभोंने अपनी अपनी रुचिके अनुसार एक एक प्रदेशमें एक एक राज्य स्थापित कर लिया।

यह निमि ही विदेहवंशका प्रथम राजा और अधिष्ठाता हुआ। इसीके कुलमें सतीप्रधाना सीताजीने जन्म लिया। निमिका पुत्र मिथि था, इसने मिथिला देश बसाया। वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि निमिसे जनक और कुशध्वज तक सब समेत २३ राजा मिथिलाके सिंहासनपर आरूढ़ हुए। श्रीजानकीजी इसी जनक की कन्या थीं। जनकका दूसरा नाम शिरध्वज था। श्रीजानकीजी भगवान् रामचन्द्र की पत्नी थीं, इससे राजर्षि जनक और महाराज दशरथका एकही समयमें होना निश्चित होता है। परन्तु केवल वाल्मीकिकी तालिकाके अनुसार इन दोनों शाखाओंकी तुलना करनेसे दोनोंमें ११ पीढ़ियोंका अन्तर देख पड़ता है। जनक और कुशध्वज आदि गोत्रपति निमिसे तेईस पीढ़ीके उपरान्त हुए। निमि महाराज इक्ष्वाकुके सबसे छोटे पुत्र थे, इसलिये जनक और कुशध्वज उनसे २४ पीढ़ी पश्चात् हुए। इधर महाराज दशरथ जनक और कुशध्वजके समसामयिक होने पर भी इक्ष्वाकुसे ३४ पीढ़ी पीछे हुए। अतएव विदेहकुलकी अपेक्षा रघुकुलमें दस पीढ़ियां अधिक पाई जाती हैं।

और, यदि व्यासकी दी हुई तालिकासे दोनोंकी तुलना की जावे तो रघुकुलमें १२ पीढ़ियोंकी अधिकता देख पड़ती है। ऐसी अवस्थामें दशरथ और शिरध्वज (जनक) का एकही कालमें होना कैसे बहुत हो सकता है ?

अब तनिक सूर्यवंशको छोड़कर कुछ देरके लिये चन्द्रवंशकी समालोचना करनी चाहिये, फिर दोनों वंशोंके समसामयिक राजाओंकी जीवनीकी आलोचना की जायगी। चन्द्र और सूर्य दोनों वंशोंका बीज एकही समय बोया गया, परन्तु दोनोंकी पुष्टि ठीक एकसाथ नहीं हुई। चन्द्रवंश धीरभावसे पुष्ट हुआ, थोड़ा थोड़ा करके धीरे धीरे उसने बहुत बल प्राप्त किया, इसी बलके प्रभावसे एक समय आधा एशियाखण्ड उसकी सहायता करनेको तैयार हुआ था। परन्तु सूर्यवंश ऐसा नहीं है, उसकी ज्योति निकलनेके साथही देखतेही देखते एकबारही बहुत बड़ी हो गई—देखतेही देखते उसने असह्य होकर सारे भारतवर्षको जला डाला। एक समय प्रचण्ड भारतमहासागरका लङ्काद्वीप तक उसके दिग्दाही किरणोंसे भस्म हो गया था। परन्तु चन्द्रवंश सूर्यवंशकी अपेक्षा बहुत विस्तृत है।

चन्द्रके पुत्र भगवान् बुधने चन्द्रवंशकी प्रतिष्ठा की। बुधने वैवस्वत मनुकी कन्या ईलाके साथ विवाह करके उसके गर्भसे राजर्षि पुरूरवाको उत्पन्न किया। पुरूरवाकी चौथी पीढ़ीमें महाराज ययाति हुए। ययातिके दो स्त्रियां थीं,—एक शुक्राचार्यकी दुहिता देवयानी और दूसरी दानवराज वृषपर्वकी कन्या शर्मिष्ठा। ययातिके देवयानीके गर्भसे यदु और तुर्वसु नामक दो और शर्मिष्ठाके पेटसे द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उनके इन पांचों पुत्रोंमें बड़े यदु, चौथे अनु तथा पांचवें पुरुसे चन्द्रवंशकी विस्तृति एवं पुष्टि हुई। यदुकुलमें संसार-विजयी वीर कार्त्तवीर्यार्जुन, हैहय, तालजङ्घ और भगवान् श्रीकृष्णने जन्म लिया, अनुकुलमें अङ्गराज, रोमपाद और वीर कर्णके पालकपिता अधिरथीसूत आदि राजा जन्मे और सबसे छोटे पुरुके कुलमें पाण्डव धार्त्तराष्ट्र और द्रौपदीका जन्म हुआ।

इस पुरुकुलमें ही मगधराज जरासन्ध उत्पन्न हुए थे। ये श्रीकृष्णके बड़े भारी शत्रु थे और इनके भयसे कृष्णको सदा सावधान रहना पड़ता था। मध्यम पाण्डव भीमसेनने जरासन्धका वध किया।—अब यह देखना चाहिये कि इन सभोंमें परस्पर कौन किसके समयमें हुआ।

चन्द्रवंशके सभी राजा भगवान् बुधके वंशधर हैं। बुध चन्द्रके पुत्र थे, उन्होंने वैवस्वत मनुकी कन्या ईलाके साथ विवाह किया था। ऊपर जिन सब चन्द्रवंशी राजाओंके नाम लिखे गये उनमें रोमपाद, कार्त्तवीर्यार्जुन, हैहय और तालजङ्घ

को छोड़ शेष सब एक दूसरेके समसामयिक थे, अर्थात् पाण्डव और धार्त्तराष्ट्र-गण, कर्ण, श्रीकृष्ण, द्रौपदी और जरासन्ध सब एकही समयमें हुए । इनके एक समयमें होनेका वृत्तान्त कदाचित् पुराण जाननेवाले सभी पाठक जानते होंगे। परन्तु आश्चर्यकी बात है कि इनमेंसे कइयोंमें प्रायः आठ दस पीढ़ियोंका अन्तर पाया जाता है। बुधसे गणना करनेसे युधिष्ठिर और दुर्योधन ४८, कर्ण ३८, श्रीकृष्ण ४७ और द्रौपदी तथा जरासन्ध ४८। ४८ पीढ़ी पश्चात् अवतीर्ण हुए।

अब हम पुराणादि प्राचीन ग्रन्थोंमें चन्द्र और सूर्यवंशी राजाओंका जो समसामयिकत्व दिखाया गया है उसकी आलोचना है। जिस समय ये सब नृपति हुए थे वह समय अब नहीं है, अतएव अनुमानोंकी सहायताके बिना उनके सम्बन्धकी बातोंके सत्य असत्य होनेका निर्णय करना असम्भव है।

१—हरिवंश देखनेसे विदित होता है कि सूर्यवंशी कुकुत्स्थकी गो-नाम्नी कन्याके साथ चन्द्रवंशी नहुषके पहले पुत्र यतिका विवाह हुआ, सो नहुष और कुकुत्स्थ अवश्य एकही समयमें हुए। इधर पहले प्रमाणित हो चुका है कि इक्ष्वाकु और बुध परस्पर समसामयिक थे, क्योंकि बुधने इक्ष्वाकुकी बहिन ईलाको अपनी पत्नी बनाया था, परन्तु बुधके चार पीढ़ी बाद नहुष और इक्ष्वाकुके तीन पीढ़ी पश्चात् कुकुत्स्थ हुए। अतएव यहां केवल एकही पीढ़ीका अन्तर पाया जाता है।

२—सूर्यवंशी युवनाश्वकी कन्या कावेरीके साथ चन्द्रवंशी जन्हुका विवाह हुआ। युवनाश्व इक्ष्वाकुकी नवीं पीढ़ीमें और जन्हु बुधके तीसरे पौत्र अमावसुकी छठी अथवा बुधकी आठवीं पीढ़ीमें हुआ। सो यहां भी दोनों वंशोंमें केवल एकही पीढ़ीका अन्तर प्रगट होता है।

३—सूर्यवंशी युवनाश्वसे चन्द्रवंशी मतिनारकी कन्या गौरीका परिणय हुआ। युवनाश्व प्रसिद्ध मान्धाताका पिता और धुन्धुमारका पुत्र था। इक्ष्वाकुकी आठवीं पीढ़ीमें धुन्धुमार और बुधकी अठारहवीं पीढ़ीमें मतिनार हुआ। एकबारही दस पीढ़ियोंका अन्तर है। व्यासकी लिखी सूर्यवंशकी तालिकामें मान्धातासे पहले युवनाश्व नामक दो व्यक्तियोंका नाम मिलता है। एक मान्धाताके पिताका जो इक्ष्वाकुकी अठारहवीं पीढ़ीमें हुआ था, दूसरा इक्ष्वाकुकी नवीं पीढ़ीमें उत्पन्न होनेवाले व्यक्तिका।

४—सूर्यवंशी मान्धाताने चन्द्रवंशी शशविन्दुकी कन्या चैत्ररथीको अपनी पत्नी बनाया। मान्धाता युवनाश्वका पुत्र था, अतएव युवनाश्व और शशविन्दुका एकही समयमें होना निश्चित हुआ। परन्तु पता लगानेसे दोनोंमें प्रायः चार पीढ़ियोंका अन्तर पाया जाता है। शशविन्दु महाराज ययातिके पहले आत्मज यदुके दूसरे पुत्र क्रोष्टुके वंशमें उत्पन्न हुआ था, क्रोष्टु बुधकी सातवीं पीढ़ीमें हुआ और शशविन्दु क्रोष्टुकी छठीमें, अतएव वह बुधकी बारहवीं (पीढ़ी) में जन्मा। इस और दिखाया जा चुका है कि मान्धाताके पुत्र युवनाश्वने इक्ष्वाकुकी नवीं पीढ़ीमें जन्म लिया था। यहां पर दोनों कुलोंमें तीन चार पीढ़ियोंका अन्तर पाया जाता है। यदि यहां भी व्यासकी सूर्यकुलतालिकाका अवलम्बन किया जाय तो सूर्यवंशकी शाखामें तीन चारका नहीं वरन् छः सात पीढ़ियोंका अन्तर पड़ जायगा।

५—हरिश्चन्द्र, विश्वामित्र, परशुराम, कार्त्तवीर्यार्जुन और रामचन्द्र—ये लोग पुराणमें लिखे हुए विवरणके अनुसार एकही समयके हो सकते हैं। क्योंकि हरिश्चन्द्र विश्वामित्रके समकालीन थे, विश्वामित्र रामचन्द्रके समसामयिक थे, और परशुराम रामचन्द्र तथा कार्त्तवीर्यार्जुन एकही समयमें हुए। अतएव परशुराम रामचन्द्र समकालीन थे और विश्वामित्र तथा उनके समसामयिक हरिश्चन्द्र समकालीन थे। तात्पर्य यह कि हरिश्चन्द्र, विश्वामित्र, परशुराम, कार्त्तवीर्यार्जुन और रामचन्द्र एकही समयमें वर्तमान थे। परन्तु यह बिलकुल असम्भव है। पुराणका तत्व जाननेवाले पाठको! विचार करके देखो कि पौराणिक आर्यनृपतियोंकी कुलतालिका कितनी गड़बड़ है!

६—सूर्यवंशी महाराज दशरथ और चन्द्रवंशी रोमपादमें बड़ी मित्रता थी, अतएव दोनों एक समयके थे। रामायणमें लिखा है कि महाराज दशरथने पुत्रेष्टि करनेके अभिप्रायसे रोमपादके यहांसे ऋष्यशृङ्ग ऋषिको बुलवाया था, अतएव रोमपाद और दशरथ समसामयिक हुए, परन्तु दोनोंमें अनेक पीढ़ियोंका अन्तर पाया जाता है। रामायणके अनुसार महाराज दशरथ इक्ष्वाकुकी चौंतीसवीं पीढ़ी में हुए, इधर रोमपाद बुधकी तेईसवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुआ था। दो एक नहीं, एकबारही ग्यारह पीढ़ियोंका अन्तर देख पड़ता है! यदि व्यासकी तालिकाके अनुसार गिनती की जाय तो और भी गड़बड़ पड़ेगी। व्यासके मतसे महाराज दशरथ

इक्ष्वाकुकी ५१वीं पीढ़ीमें अथवा रोमपादके ३२ पीढ़ी पश्चात् हुए। ऐसी अवस्थामें वाल्मीकिकी तालिकासे थोड़ा बहुत मतलब निकल सकता है।

यदि महर्षि व्यासकी तालिकाका अवलम्बन कर सूर्य्यवंशी राजाओंकी संख्या का निर्णय किया जाय तो बड़ी भारी गड़बड़ पड़ेगी। अवश्यही कहना पड़ेगा कि श्रीरामचन्द्रजीके बहुत पश्चात् युधिष्ठिर कृष्ण और दुर्योधनादि अवतीर्ण हुए और कुरुक्षेत्रका युद्ध राम रावणके युद्धके बहुत पीछे हुआ। इसके सम्बन्धमें केवल एकही प्रमाण लिख देनेसे इसकी यथार्थता प्रकट हो जायगी। श्रीभागवतपुराणमें लिखा है कि वृहद्बलनामक एक सूर्य्यवंशी राजाने कुरुक्षेत्रयुद्धके समय महाराज दुर्योधनका पक्ष लिया था, अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके हाथ उसकी मृत्यु हुई। इस वृहद्बलने भगवान् रामचन्द्रके ज्येष्ठ पुत्र कुशके वंशमें जन्म लिया था। गणना करने से विदित होता है कि यह रामचन्द्रकी तीसवीं पीढ़ीमें हुआ, अतएव यह स्पष्ट है कि युधिष्ठिर कृष्ण और दुर्योधनादिके बहुत पहले लङ्काविजेता भगवान् रामचन्द्रजी हुए थे। परन्तु व्यासकी तालिकाके अनुसार गणना करनेसे रामचन्द्रजी का युधिष्ठिरादिके सात आठ पीढ़ी बाद होना प्रमाणित होता है। यह बड़े आश्चर्य्यका विषय है। ऐसी जटिल वंशपत्रिकासे ऐतिहासिक सत्यताका पता लगाना सामान्य विषय नहीं है।

यहांपर इतनाही कहा जा सकता है कि यदि वाल्मीकिकी तालिका सत्य मानी जाय तो श्रीरामचन्द्रजीके पूर्व्वजकी अनेक अंशोंमें रक्षा हो सकती है।

तीसरा अध्याय।

प्राचीन आर्य्यनृपतियोंके द्वारा भिन्न भिन्न नगर और राज्यका स्थापित होना।

अयोध्या नगरी ही सूर्य्यवंशी राजाओंकी पहली और प्रधान कीर्त्ति है। भगवान् वैवस्वत मनु इस नगरीके प्रतिष्ठाता थे। किस समय इस प्रसिद्ध नगरीकी प्रतिष्ठा हुई, इसका पता लगाना कठिन है। वाल्मीकिका वर्णन पढ़नेसे विदित होता है कि किसी समय यह नगरी इन्द्रपुरीके समान थी। उनकी वर्णना चाहे कुछ अतिरञ्जित भी हो परन्तु विशेष विचारके साथ देखनेसे स्पष्ट मालूम होगा कि श्रीरामचन्द्रजीके समयमें ऐसी भरी पुरी नगरी भारतवर्षमें दूसरी नहीं थी।

परन्तु क्या अयोध्यापुरीने एकही दिनमें ऐसा सौन्दर्य और ऐसी समृद्धि प्राप्त करली थी? नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। अवश्यही धीरे धीरे सौन्दर्यमयी और समृद्धिपूर्ण होते होते एकदिन उसने भारतवर्षके अन्यान्य सब नगरोंसे ऊँचा आसन प्राप्त किया था।

जिस समय अयोध्याकी प्रतिष्ठा हुई प्रायः उसी समय इक्ष्वाकुके पौत्र मिथिने मिथिलापुरी स्थापित की। मिथिके वंशधर जनक नामसे पुकारे जाते थे। क्रमशः यह जनक शब्द उसके वंशधरोंका प्रधान गोत्र बन गया।

अयोध्या और मिथिलासे पहले सूर्यवंशी राजाओंके द्वारा भारतभूमिमें और कोई नगर स्थापित हुआ था या नहीं इसका हत्तान्त कहीं नहीं मिलता। इन दोनों नगरियोंकी प्रतिष्ठाके बाद रोतस् चम्पापुर आदि कईएक छोटे छोटे नगर मनुके वंशधरोंने भारतमें बसाये थे।

भगवान् बुधके प्रतिष्ठित किय हुए चन्द्रवंशका इच्च बहुत विस्तृत है। उसकी भिन्न भिन्न शाखाओंसे जो वीर नरपति उत्पन्न हुए प्रायः उन सभोंहीने भिन्न भिन्न स्थानोंमें पृथक् पृथक् नगर बसाये। उन नगरोंमेंसे अधिकांश इस समय नष्ट हो गये है। जो दो एक वर्तमान हैं वे भी विध्वस्त और चूर्णविचूर्णित अवस्थामें हैं। तौभी उस ध्वंसराशिसे उनका प्राचीन गौरव अब भी कुछ कुछ झलक मारता दिखाई देता है। बहुतोंके मतसे प्रसिद्ध प्रयाग नगर चन्द्रवंशी राजाओंकी प्रथम कीर्त्ति है, परन्तु अनुसन्धान करनेसे इससे पहले एक और नगरके स्थापित होनेकी बात पाई जाती है। उस नगरीका नाम माहिष्मती है। वह नर्मदाके किनारे पर है, हैहयकुलके महावीर कार्त्तवीर्यार्जुनने उसे स्थापित किया था। आज भी वह अपने प्राचीन स्थानपर माहेश्वर नामसे प्रसिद्ध है।

जो कुशस्थली द्वारका भगवान् श्रीकृष्णकी प्रधान राजधानी थी उसकी प्रतिष्ठा प्रयाग शूरपुर वा मथुरासे बहुत पहले हुई थी। भागवतमें लिखा है कि महाराज इक्ष्वाकुके सबसे छोटे भाई आनर्त्तने † यह नगरी स्थापित की थी; परन्तु यदुवंशी नृपतियोंने कब वहां प्रतिष्ठा पाई इसका हाल उक्त ग्रन्थमें नहीं मिलता।

† यहांपर टाड साहबने भूल की है। भागवतमें ऐसा नहीं लिखा है कि आनर्त्तने कुशस्थली स्थापित की। असलमें आनर्त्त महाराज इक्ष्वाकुका भतीजा

जेसलमेरके प्राचीन इतिहासग्रन्थमें लिखा है कि सबसे पहले प्रयाग फिर मथुरा और अन्तमें द्वारकाकी प्रतिष्ठा हुई, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि यह बात कहां तक विश्वसनीय है। इन तीनों नगरोंकी अवस्था और प्रकृति हिन्दू मात्र जानते हैं इसलिये इनके विषयमें यहां विशेष कुछ नहीं लिखा गया। इन तीनों नगरोंमें प्रयागही सबसे प्रसिद्ध है। एक समय प्रयागमें पुरुवंशके लोग राज्य करते थे, विख्यात यात्री मेगास्थिनीस अपनी भारतयात्राके समय इस नगर का सौन्दर्य देखकर एकदम विमोहित हो गया था।

सिकन्दरेआजमके समयके इतिहासलेखकोंकी लिखावटसे प्रतीत होता है कि जिस समय इस संसारविजयी वीर सिकन्दरने भारतवर्षपर चढ़ाई की थी उस समय मथुराके आसपासकी भूमि और वहांके रहनेवाले शौरसेनी कहे जाते थे। भगवान् श्रीकृष्णसे पहले दो शूरसेन यदुकुलमें उत्पन्न हुए थे। एक उनके पितामह और दूसरे उनसे आठ पीढ़ी पहले। इन दोनोंमें किसने शूरपुर स्थापित किया यह हम ठीक नहीं कह सकते। उक्त (सिकन्दरके समयके) यूनानी इतिहासलेखकोंने लिखा है कि जिस समय वीरवर सिकन्दर भारतमें आया था उस समय शौरसेनी प्रदेशमें मथुरा और क्लिसबुरा नामकी दो नगरियां थीं। हम नहीं कह सकते कि क्लियबुरा शब्द शूरपुरके ही स्थानमें लिखा है या कोई और बात है। दुःखका विषय है कि यूनानी इतिहासकर्त्ताओंने पौराणिक नामोंको बहुत बिगाड़कर लिखा है।

चन्द्रवंशके सुविख्यात नरपति महाराज हस्तीके द्वारा हस्तिनापुर निर्मित हुआ। जो हस्तिनापुर एक समय पौरव नृपतियोंकी तेजोप्रभासे मध्याह्नके सूर्यके समान तप रहा था, जिसकी गौरवगरिमा एक समय सारे संसारमें फैली हुई थी—आज वही हस्तिनापुर भारतवर्षके नक्शेसे एक प्रकार प्रायः विलुप्त हो गया है, समयके कठोर हाथोंने आज उसे चूर्णविचूर्णित और विध्वस्त कर डाला है। इस दशामें भी हस्तिनापुर अपने प्राचीन गौरवका स्मृतिचिन्ह बना रहता और उसीको देख-कर अभागे भारतवासी अपने सन्तप्त हृदयको थोड़ा बहुत आश्वस्त करते, परन्तु

था। उसके पिताका नाम शर्याति था। शर्यातिके उत्तानबर्हि आनर्त्त और भूरि-षेण नामक तीन पुत्र थे। उनमें आनर्त्तका रैवत नामा एक पुत्र था। इसी रैवतने कुशस्थली स्थापित की। देखिये श्रीमद्भागवत, नवां स्कन्ध, ३रा अध्याय।

दुर्भाग्यसे वह भी नहीं रहा। भागीरथीकी तीव्र तरङ्गमालाके प्रभावसे महाराज हस्तीकी कीर्त्तिका रहा सहा चिह्न भी नदीजलमें डूबकर अधिकांश विलीन हो गया है! शिवलोकके आकाशभेदी पर्वतप्राचीरको भेदकर सुरधुनीने जिस जगहसे पुण्यभारतखण्डमें प्रवेश किया है उसी पवित्र हरिद्वारसे बीस कोसके अन्तरपर दक्षिण दिशामें हस्तिनापुरका बहुत थोड़ा चिह्न इस समय देख पड़ता है, परन्तु वेगवती गङ्गाके कालग्राससे उसके भी बचे रहनेकी आशा नहीं होती।

कदाचित् इस बातको हिन्दू मात्र जानते होंगे कि कुरुक्षेत्रके महायुद्धसे बहुत पूर्व यह हस्तिनापुरी स्थापित की गई थी। इस भयङ्कर युद्धके आठसौ वर्ष बाद सुप्रसिद्ध मसिडोनियन वीर अलेकजेण्डर वा सिकन्दर भारतवर्षमें आया था। उस समय जो कई ग्रीक पण्डित भारतवर्षमें थे उन्होंने यहांके प्रायः अनेक नगरोंका वृत्तान्त अपनी अपनी भ्रमणपुस्तकमें लिखा है, परन्तु आश्चर्यकी बात है कि हस्तिनापुरके सम्बन्धमें उन ग्रन्थोंमेंसे किसीमें कोई बात नहीं पाई जाती।

महाराज हस्तीके पश्चात् चन्द्रवंशवृक्षसे अजमीढ़ द्विमीढ़ और पुरुमीढ़ नामकी तीन शाखाएँ निकलीं। उक्त तीनों शाखाएँ बहुत विस्तृत हुईं, परन्तु उनमें अजमीढ़ शाखाने सबसे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। अन्य दोनों शाखाओंका विशेष विवरण पुराणोंमें नहीं मिलता।

उक्त अजमीढ़ शाखाकी चौथी पीढ़ीमें वाह्यास्व नामक एक राजा हुआ। कहा जाता है कि उसने सिन्धुनदके निकट किसी प्रदेशमें अपना राज्य स्थापित किया। वाह्यास्वके पांच धुरन्धर पुत्र थे। उन्होंके द्वारा विशाल पञ्जाब देशमें पाञ्चालिका राज्य स्थापित हुआ। इन पांचों भाइयोंमें जिसका नाम काम्पिल्य था उसने काम्पिलनगर नामक एक स्वतन्त्र पुरीकी प्रतिष्ठा की।

चन्द्रवंशमें कुश नामक एक राजा उत्पन्न हुआ। उसके चार तेजस्वी पुत्र थे। उन पुत्रोंके नाम थे कुशिक कुशनाभ कुशाम्ब और मूर्त्तिमान्। इन चारों भाइयोंमें कुशाम्ब और कुशनाभ विशेष प्रतिष्ठावान् हुए। कहते हैं कि कुशनाभने गङ्गाके तीरपर महोदर नामक एक नगर बसाया। कुछ दिनके अनन्तर यह महोदर नाम बदलकर कान्यकुब्ज हो गया। यह कान्यकुब्ज बहुत दिनोंतक गौरवके साथ विराजमान रहा। फिर शहाबुद्दीन गोरीके समयमें अयोध्य अधिपति जयचन्द्रके

आजकल पुराणोंका प्रचार बढ़नेके साथ साथ अमरपूज्य आर्य्य महापुरुषोंकी कीर्तिकी बातें धीरे धीरे प्रकाशित होती जाती हैं। वे बातें पौराणिक कथाओंमें छिपी हुई हैं। दुःखका विषय है कि कोई उस कथासागरमें डूबकर उन समस्त ऐतिहासिक रत्नोंके बाहर निकालनेका उद्योग नहीं करता है।

चौथा अध्याय।

राम और युधिष्ठिरके बादके सूर्यवंशी राजाओंका संक्षिप्त विवरण, अन्यान्य राजवंशोंकी समालोचना।

महाराज इक्ष्वाकुसे लेकर श्रीरामचन्द्रजी तक और बुधसे लेकर श्रीकृष्ण तथा युधिष्ठिर तक सूर्य और चन्द्रवंशकी संक्षिप्त समालोचना करके अब हम उनके बाद की राजाओंका कुछ हाल लिखते हैं।

जयपुर और बीकानेरके राजपूत नृपति अपनी उत्पत्ति श्रीरामचन्द्रके वंशमें बतलाते हैं। इधर जैसलमेर और कच्छ प्रदेशके राजपूत अपनेको भगवान् श्रीकृष्ण का वंशधर कहकर अपने कुलका बड़प्पन प्रकट करते हैं। महाराज युधिष्ठिर जरासन्ध अथवा चन्द्रवंशी और किसी राजासे अन्य कोई हिन्दूराजवंश उत्पन्न हुआ यां नहीं इसकी जाच आगे चलकर की जायगी।

भगवान् श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्णके पश्चात् सूर्य और चन्द्रवंशमें जो नरपति उत्पन्न हुए उनके तीन विभाग हैं।—(१) सूर्यवंश और श्रीरामचन्द्रके वंशधर, (२) चन्द्रवंश और महाराज परीक्षितके वंशधर, (३) चन्द्रवंश तथा महाराज जरासन्धके वंशधर।

श्रीरामचन्द्रके लव और कुश नामक दो यमज पुत्र थे। बड़े लवसे मेवाड़के राणागण उत्पन्न हुए और कुशसे * मारवाड़ तथा अम्बरके नृपति लोग। कुशके

* टाड साहबने लवको श्रीरामचन्द्रका ज्येष्ठ पुत्र लिखा है, किन्तु यह उनकी भूल है। प्रसिद्ध पुराणादि ग्रन्थोंमें कुशहीको उनका ज्येष्ठ पुत्र बतलाया गया है। देखिये रामायण—

"यस्तयोः प्रथमं जातः स कुशैर्मन्त्रसंस्कृतैः। निर्मार्जनीयो नाम्ना हि भविता कुश इत्यसौ॥ यश्चावरज एवासीत्लवणेन समाहितः। निर्मार्जनीयो वृद्धाभिर्नाम्ना स भविता लवः॥

वंशधर बतलाए जाते हैं । इसी प्रकार मारवाड़के नृपतिगण भी अपनेको कुशका वंशधर प्रमाणित कर अपना सूर्यवंशी होना प्रकट करते हैं। किन्तु अनेक हिन्दू यह बात सच नहीं मानते । वे कहते हैं कि मारवाड़के नृपतिगण उस कुशके वंशधर हैं जो राजर्षि विश्वामित्रका पूर्वपुरुष था।

जिस दिन सूर्यकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीने भाईके शोकमें अपना जीवन विसर्जन किया उस दिनके बादसे जो नृपति अयोध्याके सिंहासनपर बैठे उन सबका हाल एकमात्र भागवतमें विस्तारके साथ वर्णन किया गया है। भागवतमें लिखा है कि श्रीरामचन्द्र समेत सब मिलाकर ५८ नृपति अयोध्याके सिंहासनपर आरूढ़ हुए, उनके अन्तिम वंशधरका नाम सुमित्र था। महाराज सुमित्रके पश्चात्‌के अन्य किसी सूर्यवंशी राजाका वृत्तान्त किसी दूसरे पुराणमें नहीं मिलता। परन्तु अम्बरके प्रसिद्ध नरपति महाराज जयसिंहने सूर्यवंशकी कुलकी जो तालिका संकलित की है उसमें दिखाया गया है कि सुमित्रके उपरान्त बहुतसे नृपति सूर्यकुलमें उत्पन्न हुए थे, वे सब मेवाड़के राणाओंके पूर्वपुरुष थे।

अभिमन्युका पुत्र परीक्षित पाण्डववीर युधिष्ठिरका उत्तराधिकारी था। परीक्षितसे लेकर सब मिलाकर ६६ राजा इन्द्रप्रस्थके सिंहासनपर आरूढ़ हुए। उनके अन्तिम उत्तराधिकारीका नाम राजपाल था । राजतरङ्गिणी और राजावलीके सिवा दूसरे किसी इतिहासग्रन्थमें इन भूपतियोंका स्पष्ट विवरण नहीं मिलता। राजपाल महाराज विक्रमादित्यका समसामयिक था। कहते हैं कि यह (राजपाल) कुमाऊँ राज्यपर आक्रमण करनेपर वहांके अधिपति सुखवन्तके हाथों युद्धमें मारा गया। विजयी महाराज सुखवन्तने जीतकी प्रसन्नतामें फूले अङ्ग न समाकर उन्मत्तताके साथ अपने देशवैरी राजपालकी इन्द्रप्रस्थ नगरी अपने अधिकारमें कर लेनेके अभिप्रायसे उस ओर यात्रा की। सुखवन्तने राजपालकी राजधानी निस्सन्देह अधिकारमें करली, किन्तु अधिक दिन उसका उपभोग वह नहीं कर सका, शीघ्रही विक्रमादित्यके प्रचण्ड विक्रमबलसे वह उस प्रदेशसे बाहर करदिया गया।

अवश्यही राजचक्रवर्त्ती महाराज विक्रमादित्यने कुमायूंनरेश सुखवन्तके हाथसे इन्द्रप्रस्थका उद्धार किया, परन्तु फिर उसकी उसकी पूर्वशोभाकी अवस्थामें लानेका यत्न नहीं किया। यह कभी नहीं कहा जा सकता कि यदि वे इस विषयमें

येष्टा करते तो कृतकार्य न हो सकते, क्योंकि वेही उस समय भारतवर्षके सबसे श्रेष्ठ नृपति थे। बात यह थी कि समस्त भारतवर्षका सौन्दर्य और आर्यकुलका गौरव उस समय उनकी इन्द्रपुरी अमरावती जैसी अवन्ती नगरीमेंही ठहरी हुई थी।

राजाधिराज विक्रमादित्य यदि इच्छा करते तो पाण्डवोंकी भूमि इन्द्रप्रस्थको उसके प्राचीन गौरवकी ऊँचीसे ऊँची सीढ़ीपर पहुँचाकर छोड़ते, परन्तु ऐसा न करके उन्होंने केवल सुखवन्तके हाथसे उसका उद्धार किया और फिर वे वहांसे अपनी उज्जयिनी राजधानीको चले आये। जिस दिन उन्होंने इन्द्रप्रस्थको छोड़ा उसदिनसे लगातार आठ शताब्दियों तक वहांका राजासन खाली रहा। जो इन्द्रप्रस्थ एक समय अपने सौन्दर्य और गौरवके प्रतापसे सुरनगरी अमरावतीके तुल्य हो गया था वही इन्द्रप्रस्थ इतनी लम्बी अराजकताके कारण भीषण श्मशानके समान हो गया, ऐसे समयमें अनङ्गपाल नामक एक महापुरुषने अपनी क्षमतासे उसमें फिर जीवन डाल दिया। अनङ्गपाल क्षत्रिय था; इतिहासमें वह पाण्डुके वंश का बताया गया है। अपने पूर्वपुरुषोंकी कीर्तिकी उसने अवश्य रक्षा की, किन्तु वह प्राचीन इन्द्रप्रस्थ नाम बदलकर उसकी जगह दिल्ली वा देहली नाम रक्खा।

प्रसिद्ध राजावली ग्रन्थमें लिखा है,—"भारतवर्षके उत्तर भागमें कुमाऊँ एक पहाड़ी स्थान है। वहांसे सुखवन्त नामक एक राजाने आकर चौदह वर्षतक इन्द्रप्रस्थमें राज्य किया। इसके बाद महाराज विक्रमादित्यने उसे मारकर उस स्थानका उद्धार किया। भारतसमरसे लेकर इस समयतक २८१५ वर्ष हुए हैं।" इसी ग्रन्थके एक दूसरे स्थानमें लिखा है,—"मैंने बहुतसे पौराणिक ग्रन्थ देखे, परन्तु किसीमें युधिष्ठिर और पृथ्वीराजके बीचके समयमें देहलीके सिंहासन पर एकसौसे अधिक राजाओंका आरूढ़ होना नहीं पढ़ा। इन एकसौ नृपतियोंने ४१०० वर्ष तक राज्य किया। इनका राजत्व समाप्त होनेके पश्चात् इन्द्रप्रस्थ नगरी सूर्यकुलके अधिकारमें चली गई।"

जिस दिन महाराज युधिष्ठिरने अभिमन्युके पुत्र परीक्षितके हाथमें राज्यका भार सौंपकर परलोककी यात्रा की उस दिनसे महाराज पृथ्वीराजके अभिषेक तक इन्द्रप्रस्थके सिंहासनपर सब मिलाकर एकसौ नृपति आरूढ़ हुए।

विशाल चन्द्रवंशकी एक और बड़ी शाखाका वृत्तान्त लिखना आवश्यकीय

समझकर अब हम उसकी ओर ध्यान देते हैं। महाराज जरासन्ध इस शाखाकुलका एक प्रसिद्ध नृपति था। वह राजगृहमें राज्य करता था। भागवतमें लिखा है कि उसके पुत्र सहदेव और पौत्र मार्जारि (दोनों) महायुद्धके समय उपस्थित थे, अतएव वे महाराज परीक्षितके समकालीन हुए। महाराज जरासन्धके बाद उसके वंशके २३ नरपति मगधके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनमें अन्तिमका नाम रिपुंजय था। रिपुञ्जय अपने मन्त्री शुनकके द्वारा पदच्युत किया और मारा गया। दुष्ट मन्त्री शुनकने राजहत्याके पापसे अपनेको कलुषित किया किन्तु उस राज्यका उपभोग वह स्वयं नहीं कर सका, - अपने पुत्र प्रद्योतको वह अधर्मसे प्राप्त किया हुआ राज्य सौंपकर उसने संसारसे मुख मोड़ा।

राजघाती शुनकके पुत्र प्रद्योत और उसके वंशके चार और नृपतियोंने मगध में राज्य किया। इसके बाद अन्तिम नरेश नन्दिवर्द्धनके साथही शुनकके कुलका भी अन्त हो गया। इन पांचों राजाओंने (सब मिलाकर) १३८ वर्ष राज्य किया।

उस समय शिशुनाग नामक एक विजयी राजाने प्रचण्ड बलसे भारतमें आकर जरासन्धके सिंहासन पर अधिकार कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि वह तक्षकस्थान † वा नागदेशसे आया। शिशुनागसे लेकर उसके वंशके अन्तिम नरेश महानन्द तक सब मिलाकर दश नृपतियोंने मगधराज्यका शासन किया। महानन्दने क्षत्रिय राजाओंसे घोर युद्ध करके उनमेंसे अधिकांशका बध कर डाला। इन दशों राजाओंका राज्य तीनसौ साठ वर्षतक रहा। इनके बाद कई शूद्र राजा मगधके सिंहासनके अधिकारी हुए।

शिशुनागके वंशका लोप होतेही मौर्यवंशने मगधके सिंहासनका अधिकार प्राप्त किया। प्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त इस वंशका प्रथम राजा हुआ। इतिहासके पढ़नेवाले जानते होंगे कि एक समय महाराज चन्द्रगुप्तकी कीर्त्ति समुद्रोंको पार करके सुदूर पश्चिमीय देशोंतक पहुँच गई थी। मौर्यवंशमें दश राजा हुए, उन्होंने एकसौ सैंतीस वर्षतक राजत्व किया।

मौर्यवंशके अन्तिम अधीश्वर बृहद्रथको राजसिंहासनसे उतारकर पुष्पमित्र

† तक्षकस्थानको ग्रीक इतिहासलेखकोंने सकारिस्थान लिखा है। इसका वर्त्तमान नाम तुर्किस्थान है।

नामक एक राजाने बलपूर्वक मगध पर अधिकार कर लिया । प्रद्योतसे मगधमें पांचवें वंशकी प्रतिष्ठा हुई । कहा जाता है कि यह शुनोदेशसे आया था । इसके वंशमें आठ राजे हुए । उन सभोंने एकसौ बारह वर्ष पर्य्यन्त राज्य किया । उनके अन्तिम राजाका नाम देवभूत था । देवभूतके समयमें भूमित्र नामक एक वीर पुरुषने कण्वदेशसे आकर मगधपर चढ़ाई कर दी और युद्धमें उसे मारकर उसके सिंहासनपर अपना अधिकार कर लिया । देवभूतके मारे जानेसे शुनोदेशीय प्रद्योत का वंश समाप्त हो गया ।

वीर भूमित्रने अपने भुजबलसे जिस सिंहासनकी प्राप्ति की उसपर उसके वंशके तेईस राजाओंने एक एक करके आरोहण किया, परन्तु उनमें अधिकांश शूद्रकुलमें उत्पन्न हुए थे । भूमित्रकी चौथी पीढ़ीमें कृष्ण नामक एक राजा हुआ । वह शूद्राणीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था । उसके वंशमें शूद्रवंशी नृपतियोंकी उत्पत्ति हुई । शूद्रोंके अन्तिम राजाका नाम शालाम्बुधी था । इस शालाम्बुधीके साथही मगधके राजवंशकी भी समाप्ति हो गई । मगधका जो राज्य एक समय क्षत्रियवीर जरासन्धके प्रतापसे उज्ज्वलित हुआ था वही राज्य उसके वंशकी समाप्तिके बाद क्रमशः भिन्न भिन्न छः राजवंशोंके द्वारा परिचालित होकर अन्तमें केवल नाममात्र के लिये रह गया । उसके साथही मगधका राजासन भी शून्य हो गया । फिर उसपर किसीने आरोहण नहीं किया । आज वही मगध—वीरवर जरासन्धकी लीलाभूमि, महानन्द और चन्द्रगुप्तका साधनक्षेत्र, भारतका एक शोभनीय अङ्ग—कालके कठोर हाथोंसे चूर्णविचूर्णित होकर मट्टीमें मिल जाना चाहता है ।

पांचवां अध्याय ।

भारत पर चढ़ाई करनेवाली भिन्न भिन्न जातियोंका संक्षिप्त इतिहास ।

शाकद्वीप और स्कन्दनाभकी जातियोंके साथ राजपूतजातिका मिलान ।

भगवान् मनु और बुधसे लेकर महाराज विक्रमादित्यके बाद तकके भारतवर्षीय राजाओंका संक्षिप्त इत्तान्त लिखा जा चुका; अब हम पवित्र आर्यवंशको थोड़ी देरके लिये छोड़कर भारतवर्षमें आनेवाली कुछ अनार्य जातियोंका हाल

लिखते हैं। शाकद्वीप § स्कन्दनाभ ✻ अथवा अन्य किसी अनार्य देशसे आकर जिन जातियोंने समय समयपर भारतवर्ष पर चढ़ाई की उन सबके आचार व्यवहारकी आलोचना करनाही हमारे वर्त्तमान प्रस्तावका प्रधान उद्देश्य है। हम यह भी देखना चाहते हैं कि उन अनार्य जातियोंकी कौन कौनसी बातें राजपूत जातिसे मिलती जुलती हैं।

जिन जातियोंको हमने अनार्य कहा वे अग्नि तक्षक या शितवंशसे उत्पन्न हुई थीं। इन सब जातियोंकी पौराणिक उत्पत्ति वंशविवरण और आचार व्यवहार आदिसे आर्यों की इन बातोंका मिलान करनेसे दोनोंमें इतनी सदृशता देख पड़ती है कि सहसा ऐसा अनुमान होता है कि सब जातियां एकही वंशसे निकली हैं।

ये अनार्य जातियां ठीक ठीक किस समय भारतवर्षमें आईं इसका पता लगाना असम्भव है। हां, किन देशोंसे इनका आना हुआ यह सहजमें मालूम हो सकता है।—

जिन तातार और मुगल जातियोंका वृत्तान्त भारतके इतिहासमें वर्णित है और जिन मुगल नृपतियोंके हाथमें एक समय सारे भारतवर्षकी बागडोर थी वे भी उन्हीं अनार्य वंशोंमेंसे हैं। विख्यात इतिहासवेत्ता अबुलगाजीने मुगलों और तातारियोंके विषयमें जो कुछ कहा है वह आगे लिखा जाता है।

अबुलगाजी कहता है कि जिस महापुरुषके द्वारा तातारियोंका वंश प्रतिष्ठापित हुआ था उसका नाम मुगल था। उस मुगलके अगुज नामक एक पुत्र हुआ। इसीने तातार और मुगलकुलकी प्रतिष्ठा की।

उक्त अगुजके छः बड़े वीर पुत्र हुए। उनमें पहलेका नाम कायन था और

§ शाकद्वीप (Scythia)—ग्रीक ऐतिहासिकोंने इसे शाकताई और सीथियाके नामसे लिखा है। मत्स्यपुराणमें बताया गया है कि शाकद्वीपका विस्तार जम्बुद्वीप से दुगुना था। सुविख्यात इतिहासवेत्ता ष्ट्राबो कहता है कि कैस्पियन समुद्रके पूर्वमें जो प्रदेश है वह सीथियाके नामसे प्रसिद्ध है। वहां बहुतसे पर्वत और नदियां हैं। नदियोंमें अक्षु (Oxus) प्रधान है। इधर मत्स्यपुराणसे भी शाकद्वीपमें इक्षु नामक एक नदीका होना विदित होता है।

✻ स्कन्दनाभ (Scandinavia) वर्त्तमान नार्वे और स्वीडनका प्राचीन नाम है।

दूसरेका आय। जिस ग्रन्थमें चगुजके कुलका वृत्तान्त वर्णित किया गया है उसमें लिखा है कि कांयन और आय सूर्य तथा चन्द्रकी तरह माने जाते थे। पाठक विचार करें कि यह "आय" शब्द पुराणोक्त 'आयु' शब्दका अपभ्रंश तो नहीं है।

तातारी लोग आयको अपना गोत्रपति मानकर अपनेको चन्द्रवंशी बतलाते हैं। पहलेही कहा जा चुका है कि तातारियोंके मतसे आय चन्द्रके समान था। अतएव यदि वे (अर्थात् तातारी) अपनेको चन्द्रवंशी कहकर अपने कुलका परिचय देते हैं तो यह कोई विचित्र बात नहीं है। कदाचित् इसी कारण तातारजाति चन्द्रकी पूजा पुरुषभावसे करती है।

तातारी आयका जुलदुस नामक एक पुत्र था। इस जुलदुसके पुत्रका नाम हय था। इसी हयसे चीन देशके प्रथम राजकुलकी उत्पत्ति हुई थी।

आयकी नवीं पीढ़ीमें ईलखां नामक एक राजा हुआ। ईलखांके कैयान और नागस् नामक दो बड़े वीर्यशाली पुत्र हुए। इनका वंश क्रमशः विस्तृत होकर समस्त तातार देशमें फैल गया।

जिस महावीर चंगेजखांकी वीरतारूपी प्रचण्ड अग्नि * एक समय प्रायः आधे जगत्‌में भड़क उठी थी वह चंगेज अपनेको उक्त कैयानके वंशसे उत्पन्न बतलाता था।

पुराणमें जिस नाग और तक्षक जातिका विवरण पाया जाता है जान पड़ता है कि उसकी उत्पत्ति उक्त नागस्‌के ही वंशमें हुई थी। सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डीगायनने तक्षकोंको तक्षुक मुगल नामसे लिखा है।

पौराणिक चन्द्रवंशके उत्पत्तिवृत्तान्तके साथ तातारियों और मुगलोंकी वंशोत्पत्तिका मिलान किया जा चुका। मिलान करनेसे दोनोंमें स्थान स्थानपर सदृशता दिखाई दी, परन्तु वह सदृशता किस प्रकार की है सो आगे लिखा जायगा। पहले हम उनके गोत्रपति और प्राचीन देवताओंके विषयमें लिखते हैं।

प्रथम—पौराणिक। भगवान् वैवस्वत मनुकी कन्या एकदिन वनमें घूम रही थी, ऐसे समय चन्द्रके पुत्र बुधसे उसका साक्षात्कार हुआ। बुधने उसे अपनी पत्नी बनाया। इन दोनोंके सम्मिलनसे चन्द्रवंशकी उत्पत्ति हुई।

---

* "अग्नि" शब्द संस्कृतमें पुल्लिङ्ग है, परन्तु भाषामें स्त्रीलिङ्ग लिखा जाता है, अतएव हमने भी इसे स्त्रीलिङ्गमें ही लिखा।

द्वितीय—चीनदेशके प्रथम नृपति यू (आयु) का जन्मवृत्तान्त। एकदिन कोई स्त्री घूमती हुई फो (बुध) नामक ग्रहके सम्मुख उपस्थित हुई। फोने बलपूर्वक उस रमणीके साथ उपभोग किया जिससे कुछ दिनोंमें उसके गर्भके लक्षण दिखाई दिये और यथासमय उसने एक पुत्र प्रसव किया। उस बालक का नाम यू रखा गया। इसी यूने चीनदेशके प्रथम राजवंशकी प्रतिष्ठा की। यूने चीनको ९ प्रदेशोंमें विभक्त कर ईसू खृष्टसे २२०७ वर्ष पूर्व राजत्व आरम्भ किया।

इससे विदित होता है कि तातारी आय, चीनी यू और पौराणिक आयु उक्त तीनों जातियोंके चन्द्रवंशी स्थापनकर्त्ताओंके भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं।

अब स्पष्ट प्रकट होता है कि बुधदेवने जिस धर्मका प्रचार किया था वह धर्म उस समयकी अनेक जातियोंका मुख्य धर्म हो गया था। उस धर्मका उन जातियोंने बहुत दिनोंतक एक भावसे प्रचार किया। क्रमशः जब सूर्यके उपासकगण प्रचण्ड विक्रमके साथ दिखाई दिये तब उनकी तेजस्विनी उपासनापद्धतिके आगे बुधका धर्म ठहर नहीं सका वरन् धीरे धीरे बदलता गया—और बदलते बदलते अन्तमें वर्त्तमान जैनधर्मके रूपमें परिणत हो गया।

महात्मा डियाडोराने शक जातिकी उत्पत्तिके विषयमें जो विवरण लिखा है उससे हमारा लिखा हिन्दू चीनी और तातारियोंका विवरण बहुत कुछ मिलता जुलता है। इस स्थानपर आवश्यकता देखकर हम डियाडोराकी लिखावटकी नकल प्रकाशित करते हैं। डियाडोरा लिखता है—

"अरक्सस नदकी विशाल तीरभूमिही शक लोगोंका आदिनिवासस्थान थी। आधे मनुष्य और आधे सर्पके रूपकी किसी स्त्रीके गर्भसे वे उत्पन्न हुए थे। यह अपूर्व रूपवाली रमणी पृथ्वीकी कन्या थी। जुपिटरने उसके साथ विवाह करके उसके गर्भसे शीथेश नामक एक पुत्र उत्पन्न किया। शीथेशके वंशधर उसीके नामसे प्रसिद्ध हुए। उसके पलस और नापस नामके दो बड़े वीर पुत्र जन्मे। ये दोनों इतने पराक्रमी हुए कि एक समय उन्होंने अफ्रिकाके नीलनद और पूर्वमहासागरके बीचके सुविशाल देश तकको अपने अधिकारमें कर लिया।

महावीर शीथेशने जिस विशाल वंशवृक्षका रोपण किया उससे बहुतसे राजकुल निकले। उनमें शाकन मस्साजिती अरिमास्पियन प्रधान हैं। एक समय इन

वीरवंशियोंने अपने प्रचण्ड भुजबलसे अशोरिया और मीडिया राज्य जय करके वहांके निवासियोंको अरक्सस नदके किनारेपर बसा दिया था।

शौवेशने जिस वंशवृक्षकी जड़ जमाई उसकी शाखाओंमें उत्पन्न हुए बहुतसे राजवंशोंने राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें प्रतिष्ठा पाई। परन्तु जिस समय उन्होंने सुदूर शाकद्वीपसे आकर भारतके राजस्थान प्रदेशमें प्रतिष्ठा प्राप्त की इसका हाल आगे चलकर मिलेगा। इस जगह हम यह देखना चाहते हैं कि आर्यवीर राजपूतोंकी (धर्म समाज और व्यवहार-सम्बन्धिनी) रीतिभांति उक्त शाकद्वीपवासियोंकी रीतिभांतिसे कहांतक मिलती जुलती हैं। दोनोंकी रीतिनीतिमें इतनी समानता पाई जाती है कि सहसा दोनोंको अभिन्न कहते बनता है।

पहनावा।—प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता टसिटसने लिखा है कि जर्मन लोग लम्बे और ढीलेढाले वस्त्र पहनते थे। वे सोकर उठतेही शरीर धो डालते और कभी अपने बालोंके जूड़े नहीं खोलते थे। उनके बाल सिरके ऊपरी भागपर जूड़ेकी तरह बँधे रहते थे।

इस समय जर्मन लोग बड़े ठण्ढे देशमें रहते हैं, परन्तु यह कभी नहीं माना जा सकता कि ऐसी रीतिनीति और पहनावा उनके देशके लिये उपयुक्त है †। अवश्यही यह आचारव्यवहार उन्होंने एशियाके ग्रीष्मप्रधान पूर्वदेशसे सीखा होगा।

देववंश।—टुइष्ट * (मङ्गल) और आर्था (पृथ्वी) प्राचीन जर्मनोंके प्रधान

† इसके अतिरिक्त इनकी अन्यान्य दैनिक क्रियाओंका जो विवरण मिलता है उससे विदित होता है कि शाकद्वीपके जित, कात्ति, किम्ब्री, शैवो और ये एक वंशके हैं। यद्यपि टसिटसने यह स्पष्ट नहीं लिखा कि जर्मनोंकी आदिनिवासभूमि भारतवर्षमें थी तथापि जब उनके विषयमें उसने यह लिखा है कि "जिस जर्मनीमें रहनेसे शरीर बिगड़ जाता है उसी जर्मनीमें एशियाके एक गर्म देशको छोड़ आकर रहना क्या बुद्धिमानीका काम है?" तब यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि एशियाके किसी प्रदेशका जर्मन लोगोंकी आदिनिवासभूमि होना टसिटसको मालूम था।

* ईसू खृष्टकी पांचवीं शताब्दिमें शालीन्द्रपुर (शालपुर) में जित जातिका एक राजा राज्य करता था। उसके राजत्वके सम्बन्धमें एक शिलालेख पाया गया है।

देवके समान थे । उनके मतके अनुसार टुइष्टकी उत्पत्ति भगवान् मनुषके द्वारा आर्थाके गर्भसे हुई ।

जर्मनोंने उक्त टुइष्ट (मङ्गल) * और वोधेन (बुध) को एक करकर लिखा है जिससे स्थान स्थान पर बहुत गड़बड़में पड़ना पड़ता है ।

पूजनविधि ।—स्कान्दनाभ देशमें जितनाको एक महा पराक्रमवाली जाति रहती थी । उसका वंश अनेक शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त था । उन शाखाओंमें शैव और शैवी शाखाके लोग विशेष प्रतिष्ठित थे । कहते हैं कि उक्त शैव लोग पृथ्वीकी पूजा करते ¶ और उसके सन्तोषके लिये अपने पवित्र कुञ्जोंमें मनुष्यकी बलि चढ़ाते थे । उनके धर्मग्रन्थोंमें यह भी लिखा है कि उनकी आराध्यदेवता भगवती वसुमतीका रथ एक गायके द्वारा † खींचा जाता था ।

शैवीगण भी मूर्त्तिपूजक थे, परन्तु वे आर्थाका पूजन न करके ईशी नामकी (ईशानी वा गौरी) की आराधना करते थे । यह ईशी प्राचीन मिश्रदेशवासियोंकी आराध्यदेवताओंमेंसे एक थी । किन्तु मिश्रवाले केवल ईशीकी पूजा न करके अशीरीश और ईशी (हरगौरी) दोनोंकी पूजा करते थे । उदयपुरके विशाल सरोवरके तटपर इस समय भगवती-ईशानीकी जैसी पूजा होती है एक समय मिश्रदेश

उस लेखमें एक स्थानपर इस राजाको टुइष्टके कुलका बतलाया गया है ।—तब यह टुइष्ट कौन था ?

* हिन्दूशास्त्रका भी यही मत है कि मङ्गलग्रहकी उत्पत्ति पृथ्वीसे हुई है—

"उपेन्द्रवीजात् पृथ्व्यान्तु मङ्गल: समजायत ।—" ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ।

यद्यपि अन्यान्य पुराणोंमें मङ्गलकी उत्पत्ति दूसरे रूपोंसे वर्णित है तथापि सबमें इसकी उत्पत्ति पृथ्वीसेही मानी गई है ।

¶ यह बात सभी सनातनधर्मावलम्बी जानते हैं कि हिन्दूशास्त्रके अनुसार पृथ्वी विशेष पूजनीय मानी गई है । स्वयं विष्णुने अनेक प्रकारसे उसकी पूजा की है ।

"......वसुन्धराये स्वाहा । इत्यनेनैव मन्त्रेण पूजिता विष्णुना पुरा ।"

† गाय (गो) पृथ्वीकी प्रतिमूर्त्ति और उसका एक नाम है । अधर्माचारी राजाओं वा असुरोंके द्वारा पीड़ित होनेपर तथा अन्यान्य कारणोंसे भी पृथ्वी गायका रूप धारण करती थी । पौराणिक ग्रन्थोंमें इसका वृत्तान्त प्राय: देख पड़ता है ।

में भी ठीक उसी प्रकारकी पूजा होती थी। प्रसिद्ध इतिहासलेखक हेरोडोटसने इस विषयमें जो कुछ लिखा है वह (लिखावट) इस बातका स्पष्ट प्रमाण है।

वीरव्यवहार।—संसारप्रसिद्ध यदुकुलमें बाहुबल नामक जो महातेजस्वी क्षत्रिय उत्पन्न हुआ था उसके वंशधर सिन्धुनद पार करके भारतके पश्चिमीय प्रदेशोंमें फैल गये थे। उनके समरसम्बन्धी आचारव्यवहारका जैसा विवरण पाया जाता है ग्रीक और स्कान्दनाभ देशवालोंका भी ठीक वैसाही विवरण मिलता है। कहते हैं कि उक्त जित ग्रीको और स्कान्दनाभीय लोग भगवान् हरिकुलश * टुइष्ट वा वोधेनके प्रशंसासूचक गीत गाते उनकी ध्वजा और प्रतिमा लिये हुए युद्धक्षेत्रमें दौड़ते और लड़ाईके समय शूल तथा मुद्गर काममें लाते थे।

आर्योंकी भांति स्कान्दनाभवाले भी त्रिमूर्त्तिकी आराधना करते थे। थर, वोधेन और फ्रेया—इन्हीं तीनोंसे उनकी त्रिमूर्त्ति होती थी। यह मूर्त्ति त्रिगुणात्मिका † थी। स्कान्दनाभवालोंकी उपास्यदेवताकी उक्त त्रिमूर्त्ति प्रतिमाको ‡ ग्रीक लोग अपने मन्दिरोंमें प्रतिष्ठित करते थे।

वसन्त ऋतुका समागम होने पर जिस समय सारी पृथ्वी एक नवीन जीवनसे जीवित हो उठती उस समय स्कान्दनाभके निवासी फ्रेयाका महोत्सव आरम्भ करते और उक्त देवताके सामने जङ्गली सूअरकी बलि चढ़ाते।

शिवकी अर्द्धाङ्गिणी वासन्ती देवी राजपूतोंकी आराध्यदेवता हैं। वसन्त ऋतु आतेही राजपूत नृपतिगण सेना आदि लेकर आखेट करने निकलते और वराह

---

* इस ग्रीसदेशके हरिकुलश और भारतीय हरिकुलेश (बलदेव) की अनेक बातोंका मिलान करनेसे दोनोंमें बहुत कम अन्तर जान पड़ता है। टाड साहबने दोनोंका एकही व्यक्ति होना अनुमान किया है, परन्तु यह अनुमान कहांतक युक्ति-सङ्गत है यह सहजमें समझा जा सकता है। उन्होंने हरिकुलश और बलदेवकी समानता दिखानेके लिये जो जो प्रमाण प्रकट किये हैं वे सब इस स्थानपर पाठकोंको अरुचिकर जान पड़ेंगे, इससे उनकी आलोचना हम आगे चलकर करेंगे।

† त्रिगुणात्मिका।—अर्थात् सृष्टि संहार और पालन करनेवाली।

‡ हिन्दुओंकी त्रिमूर्त्तिकी भांति इनकी त्रिमूर्त्ति भी त्रिगुणात्मिका थी। थर—संहार करनेवाले, वोधेन—पालन करनेवाले, फ्रेया—प्रकृतिस्वरूपिणी देवी।

का आखेट कर उसका मांस भक्षण करते हैं। उस दिन वे अपने जीवनकी ममता छोड़कर आखेटमें लगते हैं, क्योंकि उनको विश्वास रहता है कि उस दिनके जय पराजयके ऊपर वर्ष भरका सुख दुःख निर्भर करता है। अपने पर विपद् पड़नेकी आशङ्का करके उस दिन जो पराजित होते हैं उनको भगवती महामायाके क्रोधमें पड़कर समस्त वर्ष कष्ट सहन करते बीतता है।

राजपूतोंके देवसेनापति कुमार हैं। हिन्दुओंके पौराणिक ग्रन्थोंमें उनको षडानन × वा सात मुखवाला बताया गया है, परन्तु शाकद्वीपियोंके रणदेवके छः ही मुख हैं। शाकसेन, कान्ति, ग्रैवी, जित और किम्ब्रीगण सब उक्त षडानन (छः मुंहवाले) समरदेवकी पूजा करते थे।

समरविलासी राजपूतोंके युद्धधर्म और शिवपूजनपद्धतिके साथ हिन्दुओंकी दूसरी धर्मसम्प्रदायोंकी बातें बहुत कम मिलती हैं, कारण कि अधिकांश हिन्दू शान्तिप्रिय और अहिंसक होते हैं, कन्दमूलफल और स्वच्छ सुन्दर जल उनका प्रधान भोज्य और पेय होता है, ध्यानधारणा और देवोपासना करने अथवा और किसी शान्तिमय काममें वे अपना जीवन बिताते हैं, किन्तु उनकी उक्त प्रकारकी उपासनाविधिके साथ रणप्रिय राजपूतोंकी उपासना आदिका मिलान करनेसे दोनोंमें एकदम अन्तर जान पड़ेगा"। आर्यवीर राजपूत रक्तकी धारा बहानेमें प्रसन्न होते हैं। अपने उपास्यदेवके सन्तोषके लिये वे जो कुछ भोज्य वा पेय चढ़ाते हैं वह भी केवल रक्त मांससे बना हुआ जीवशरीर अथवा केवल मदिरा और रक्त होता है। मनुष्यका खोपड़ा ही उनका खप्पड़ है। कहते हैं कि इन वस्तुओंसे उनके उपास्य देव बहुत सन्तुष्ट रहते हैं इसीसे इनको वे बहुत चाहते हैं। बचपनहीसे राजपूतोंके मनमें इस बातका विश्वास जमने लगता है कि हर अपने उपासकोंके शत्रुओंका रक्त उसी विकट खप्पड़में धरकर पीते हैं। रणदेवकी मूर्त्ति बड़ी भयङ्कर होती है। उनके सारे शरीरमें भस्म लगा रहता है और भुजङ्ग लिपटे रहते हैं, दोनों आंखें भङ्ग और धतूरेके नशेमें लाल होकर चढ़ी रहती हैं, जांघपर पार्वतीजी बैठी रहती हैं

× हम नहीं जानते किस पुराणके आधार पर टाड साहबने षडाननका एक और मुख बढ़ा दिया। कुमारने षट्कृत्तिकाका दूध पीया था इसीसे तो उनके छः मुख हुए थे, फिर सातवां मुख कहांसे आगया?

और हाथमें रक्तसे भरा विकट नरकपाल होता है। यही भीषणमूर्त्ति "हर" राजपूतोंके रणदेव हैं। भारतवर्षके जिस जलते हुए रेगिस्तानी भागमें आर्यवीर राजपूतगण रहते हैं उससे क्या इस भयङ्कररूपधारिणी देवमूर्त्तिकी कल्पना की जा सकती है?—नहीं मालूम, परन्तु विचार करनेमे हठात् यही कहना पड़ता है कि युद्धवीर स्कान्दनाभनिवासियोंका और इनका वीरव्यवहार ठीक एकही प्रकारका है।

वीराचारी राजपूत मृग वराह हंस और जङ्गली मुर्गोंका आखेट करके उनका मांस भक्षण करते हैं, घोड़ा सूर्य्य और तलवारको पूजते हैं और ब्राह्मणोंकी शान्तिमयी धर्मकथाकी अपेक्षा भाटोंके गीत और रणके सङ्गीत अधिक भक्तिके साथ सुनते हैं। उनकी यह भक्ति अचल अटल और उनके जीवनके मूलमन्त्रके समान है। जिसदिन उनमें यह भक्ति नहीं रहेगी, उस दिन "राजपूत" नाम भी संसारसे लोप हो जायगा। आज जिस सुदूर स्कान्दनाभ देशके वीरपुरुषोंके साथ आर्यवीर राजपूतोंका हम मिलान कर रहे हैं उनकी वह अवस्था कहां है? जिनके साथ मिलान करनेसे भारतीय आर्यजातिको छोड़ बाकी (संसारकी) सब वीर जातियोंकी महिमा दब जाती है, आज वीरप्रसू स्कान्दनाभभूमिकी वह तेजस्विनी अवस्था कहां है?—आज वह निठुर कालके कठोर आचरणोंके कारण अपने वर्त्तमान पुत्रोंको छोड़कर चली गई है! आज हतभागिनी भारतभूमिकी तरह उस स्कान्दनाभभूमिका भी केवल नाम मात्र शेष रह गया है!

भट्टकवि।—राजस्थानकी जिस जातिके लोग राजपूत राजाओंके वंश और चरित्रकी माला कथाकी भांति रचते और समय समय पर नृपतियोंके सामने उसका कीर्त्तन करते हैं उनको भट्टकवि * वा भाट कहते हैं। महात्मा टसिटसके इतिहासग्रन्थसे इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि ऐसे कवि प्राचीन जर्मनोंमें भी

* ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है कि शूद्रके वीर्य्य और वेश्याके गर्भसे भट्टजाति जन्मी है। यथा— वेश्यायां शूद्रवीर्य्येण पुमानेको बभूव ह।
स भट्टो वावदूकश्च सर्व्वेषां स्तुतिपाठकः॥—दसवां अध्याय।
इसी पुराणके एक दूसरे स्थलमें लिखा है कि क्षत्रियके वीर्य्य और ब्राह्मणकन्याके गर्भसे भट्टजाति निकली है—"क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां भट्टो जातोऽनुवाचकः।"

पाये जाते थे। टसिटसने लिखा है कि "युद्धयात्राके समय जब ये वीररसप्रेमी कवि-गण अद्भुत जैसी वीणाके तारपर मीठी ध्वनिसे अपना सरस गम्भीर स्वर मिलाकर युद्धगीत गाते, उस समय सच्चा वीररस उबल पड़ता और प्रत्येक योद्धा अपने प्राणों की ममता भूलकर भीषण रणरङ्गमें रँग जाता।"

युद्धरथ।—भारतके आर्य और शाकद्वीपके निवासी जब जब उनको समर सम्बन्धी काम पड़ता तब तब युद्धरथ काममें लाते, इसीलिये रथ उनकी चतुरङ्गिणी ¶ सेनाका एक प्रधान अङ्ग समझा जाता है। महाराज दशरथके समयसे लेकर मुसलमानोंके द्वारा भारतके विजय किये जानेतक जिन जिन युद्धोंमें भारतवासी प्रवृत्त हुए उन सभीहोंमें वे रथ व्यवहारमें लाये, परन्तु जिसदिन यवनोंके द्वारा भारतका स्वाधीनतारूपी रत्न छीन लिया गया—जिस दिन हतभाग्य भारतसन्तान × इस अमूल्य धनसे वञ्चित होकर पराधीनताके कठिन शृङ्खलमें जकड़ दी गई,—उस दिनसे उनकी प्राचीन चतुरङ्गिणी सेनाका एक अङ्ग भङ्ग हो गया—उस दिन से उन्होंने युद्धरथका व्यवहार एकदम त्याग कर दिया। कुरुक्षेत्रकी महासमरभूमि में श्रीकृष्णने प्रिय सुहृद् अर्जुनके सारथी बनकर युद्धरथ हांका था। उसी प्रकार जरक्सिसने जिस समय ग्रीसके पहाड़ी देशमें अपना विजयी सैन्यदल परिचालित किया और दारायुने अरबलाके विशाल मैदानमें अपनी विजयपताका उड़ाई उस समय युद्धरथही उनका सबसे बड़ा बल समझा गया था *।

परन्तु ऊपर लिखी घटनाके बाद बहुत दिनोंतक भारतके दक्षिण पश्चिम

उक्त दोनों अङ्कोंमेंसे जान पड़ता है कि इस स्थान पर दूसरी भट्टजातिका वर्णन किया गया है।

¶ चतुरङ्गिणी अर्थात् हाथी घोड़ा रथ और पैदल इन चार अङ्गोंवाली—

हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्यात् चतुष्टयम्।

× "सन्तान" शब्द संस्कृतमें पुलिङ्ग होनेपर भी भाषाके व्यवहारके अनुसार इसको स्त्रीलिङ्गमें लिखना पड़ा।

* शाहफारस दारायु और महावीर अलेक्जण्डर (سکندر اعظم) में जिस समय घोर युद्ध हुआ था कहते हैं कि उस समय दारायु, २०० युद्धरथ सुसज्जित करके युद्धक्षेत्रमें ले गया था।

प्रान्तके विशाल भूखण्डमें युद्धमें व्यवहारमें लाये जाते थे । जिन जातियोंने उस समय ऐसे रथोंका व्यवहार किया उनमें काथि कोमानि और कोमारि विशेष प्रसिद्ध हैं। ये जातियां आज भी सौराष्ट्र प्रदेशमें रहती और अपने पूर्वज शकोंके प्राचीन आचारव्यवहार पर चलनेकी चेष्टा करती हैं, आज भी इनके प्राचीन पत्थरोंके खम्भोंपर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखा हुआ है कि इनके बड़े बूढ़े रथपर चढ़े हुए युद्ध करते करते शत्रुओंके हाथों आहत होकर वीरगतिको चले गये थे।

स्त्रियोंके प्रति व्यवहार।—आर्यवीर राजपूतगण अपनी गृहलक्ष्मियोंके साथ जैसा अच्छा बर्ताव करते हैं प्राचीन जर्मनीवासी स्कन्दनाभवाले और जित लोग भी अपनी स्त्रियोंके साथ ठीक वैसाही व्यवहार करते थे । इस विषयमें इन सब जातियोंमें आपसमें जितनी समानता दिखाई देती है उतनी और किसी विषयमें नहीं देख पड़ती।

टसिटस कहता है कि जर्मन लोग सङ्कट पड़ने पर स्त्रियोंकी सलाहको पवित्र देववाणी समझते थे। चन्द कविने भी अपने अमृतमय काव्यग्रन्थमें राजपूतोंके सम्बन्धमें ऐसाही लिखा है । कदाचित् इसीलिये कुलकामिनियोंके नामके साथ उपनामकी रीति पर वे "देवी" शब्द जोड़ दिया करते हैं । रमणी राजपूतों और जर्मनोंके जीवनकी जीवनस्वरूपिणी और हृदयकी अर्द्धभागिनी है। जबतक उनके तनमें प्राण रहते हैं तबतक यह दुःखदायी ध्यान भी कि जो रमणी शत्रुओंके द्वारा पकड़ी जायगी उसका वे धर्म बिगाड़ देंगे उनके हृदयको टुकड़े टुकड़े कर डालता है। वीर राजपूत और जर्मन काम पड़ने पर अपने हाथोंसे अपने सुकुमार पुत्रोंका भी सिर काटनेमें आगापीछा नहीं करते । परन्तु ऐसा प्रयोजन क्या सदा सर्वदा पड़ा करता है? नहीं, ऐसा काम वे उस समय करते हैं जब आशाका अन्त हो जाता है, जब वे एकदम निरुपाय और निरवलम्ब हो जाते हैं, जब वे देखते हैं कि प्रचण्ड देशवैरीके भीषण आक्रमणसे अब स्वाधीनतालक्ष्मीकी रक्षा नहीं की जा सकती और जब उनको जान पड़ता कि हृदयकी अर्द्धभागिनी रमणियोंका स्वर्गीय सतीत्वरत्न पाप शत्रुके द्वारा हर लिया जाया चाहता है। ऐसेही सङ्कटके समयमें निराशाकी अवस्थामें तेजस्वी राजपूतगण अपने हाथोंसे उनका सिर काटने अथवा जीते जी उनको आगमें जलानेके लिये भयङ्कर "जुहार" व्रतका

उद्यापन करते हैं ‡। इस हृदयविदारक दृश्यका पूरा पूरा हाल (आगे चलकर) मेवाड़के वृत्तान्तके साथ लिखा जायगा।

जूआ।—क्या राजपूत क्या जर्मन क्या सीथीय सभी प्राचीन जातियोंकी द्यूतप्रियताका विशेष विवरण पाया जाता है। आश्चर्य है कि इतना जान सुनकर भी कि इस अनर्थकारी खेलसे अनेक हानियां होती हैं वे क्यों बेतरह इसके फेरमें पड़ जाते थे!

जर्मन लोग अपने सब कुछ यहांतक कि अपनी स्वाधीनताको भी बाजी लगाकर जूआ खेलते और हार जाने पर जीतनेवालेकी ओरसे गुलामोंकी भांति खुलाखुली बेचे जाते थे। इसी विनाशकारी जूएके मोहमें पड़कर पाण्डवोंने अपनी सब धन सम्पत्ति खोई, इतने पर भी अन्तमें अपने हृदयकी अर्द्धभागिनी द्रौपदी तककी बाजी लगा डालनेमें वे नहीं चूके। उनकी उस द्यूतासक्तिके कारण भारतकी जो हानि हुई है उसका चिन्ह कुरुक्षेत्रके चतुर्दिक् आज भी स्पष्ट दिखाई देता है। वह चिन्ह—आर्यजातिके अधःपतनका वह निदर्शन—भारतमाताके हृदयमें चोट पहुँचानेवाली वह अक्षरेखा—भली भांति देख और उसका हाल पूरी तरह जानकर भी आर्यवीर राजपूतगण अब भी यह अनिष्टकारी * खेल बड़े उ-

---

‡ वीर राजपूतगण जब प्रचण्ड शत्रुओंसे लड़ते लड़ते एकदम निराश हो जाते थे, जब उनके बचावका कुछ उपाय नहीं रहता था, तब वीर राजपूत रमणियां यातो सतीत्वरक्षाके लिये रणसज्जासे सज्जित हो युद्धक्षेत्रमें वीरतापूर्वक लड़कर अपने पति पुत्रोंके साथ प्राण त्याग करती थीं, या जीवित ही अपने सुकुमार बच्चोंके साथ अग्निमें प्रवेश कर जाती थीं। उनके इसी कार्यका नाम जुहार है। आजकल प्रायः जुहार शब्दका अर्थ "अन्तिम भेट" माना जाता है। कविवर गिरिधरदासजीने भी लिखा है—

"हंसा उड़ि दिसि कहं चले, सरवर मीत जुहार।
हम तुम कबहूं भेटिहैं सन्देसन व्यवहार ॥
सन्देसन व्यवहार सदा ……" इत्यादि।

देखिये कविवर रायगिरिधरदासकी कुण्डलिया, संख्या ४४।

* जूआ खेलना हिन्दूशास्त्रमें एकदम मना है,—द्यूतमेतत् पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं महत्। तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥—मनुस्मृति।

चावके साथ खेलते हैं ! कैसे आश्चर्यकी बात है। इस भीषण पापाचरणने उनके पवित्र धर्मग्रन्थके विधानोंमें स्थान पाया है। उसी विधानके अनुसरणके लिये वे अब भी प्रति वर्ष दीपावलीके † उत्सव पर भगवती लक्ष्मीका प्रसाद पानेकी अभिलाषासे इस अनर्थकारी खेलमें प्रवृत्त होते हैं।

शाकुनिक और सामुद्रिक गणना।—कदाचित् हिन्दूमात्र इस बातको जानते होंगे कि आर्यगण अपने भाग्यका फल पक्षियोंके उड़ने बोलने और डैने फटकारने आदिसे निकाल लेते हैं। पक्षी किस ओर किस प्रकार उड़ गया, किस समय किस भावसे बोला, अपने डैनोंको उसने किस भांति फटफटाया, जित और जर्मन लोग भी इन बातोंको विशेष जांच करके अपना शुभ अशुभ समझ लेते थे। इसके अतिरिक्त दैवज्ञ और सामुद्रिक तत्त्व जाननेवाले व्यक्तियोंकी भी गणना पर ये प्राचीन जातियां पूरा विश्वास रखती थीं।

मदिरा पीनेकी विकट आसक्ति।—स्कान्दनाभ देशके असि और जर्मन लोग और जितकुलमें उत्पन्न हुए थे, यह बात उनकी अधिक मदिराप्रियतासे स्पष्ट प्रतीत होती है। आर्यवीर राजपूत भी इस विषयमें किसी प्रकार उनसे कम नहीं हैं। स्कान्दनाभ और जर्मनीवालोंकी भांति ये भी वारुणी देवीको विविध विधानोंसे पूजा करते हैं। क्या युद्धके समय, क्या देवपूजनके समय, क्या अतिथिसत्कारमें, सभी समय राजपूतोंमें मदिराका व्यवहार करनेकी रीति पाई जाती है। घरपर कोई अतिथि आतेही सबसे पहले वे मदिराका पात्र हाथमें लेकर आये हुए व्यक्तिकी अभ्यर्थना करते हैं। जो एक समय उनका भीषण शत्रु रहा हो—जिसका हृदय फाड़नेके लिये उनकी तलवारकी खोल सदा खुली रहती हो—वह भी यदि उनका अतिथि होना और उनके प्यालेमें मद्य पीना स्वीकार करे तो वीरहृदय राजपूत सब शत्रुता भूलकर उससे भाईकी तरह गले मिलते है। उस मदिरासे भरे पात्रका गुण गाते गाते राजपूत और स्कान्दनाभीय कवियोंकी वीणाके तारोंसे लगातार अमृतकी धारा निकलनी आरम्भ होती है। वे इस मदिराको अमृतमयी और संसारके सब पीने योग्य पदार्थोंसे बढ़कर बताते हैं। राजपूत और जित वीरोंको इस बातका पक्का विश्वास है कि यद्यपि अपने देशकी रक्षाके लिये समर-

† इस उत्सव पर हिन्दुओंके घर घर दीपमाला जलाई जाती है।

भूमिमें लड़कर वे प्राण दे देते हैं तथापि वहांसे जानेपर स्वर्गमें सुरसुन्दरियां सुरासे भरे सुन्दर प्याले लिये हुए उनकी अभ्यर्थना करती हैं। इसी विश्वास पर बड़े उत्साहके साथ वे युद्धक्षेत्रमें जाते और भूमिपर गिरने पर कहते हैं कि—"मैं मनुष्यजन्मसे मुक्ति पाकर स्वर्गके अमर लोगोंके साथ जो नित्य सुख उठाते हैं सुरारूपी अमृत पान करने जाता हूं।"

स्कान्दनाभीय वीरोंके उपास्यदेवका नाम "ओडर" है। वे कहते हैं कि मनुष्यकी खोपड़ी उनके ओडर नामक युद्धदेवके पीनेका पात्र था। जान पड़ता है कि स्कान्दनाभवालोंकी देवसम्बन्धिनी यह कल्पना राजपूतोंके रणदेव "हर"से ली गई है। इस विषयमें इनके काव्यग्रन्थोंमें यह विवरण पाया जाता है कि युद्धके समय उक्त रणदेव भीषण रूप बनाकर मनुष्यका कपाल हाथमें लिये दौड़ते और गिरे हुए शत्रुओंका खूब रक्त पीते थे।

जिनके खेलका स्थान युद्धक्षेत्र है, जो मदिराको पीने योग्य द्रव्योंमें सबसे बढ़कर मानते हैं, भूतभावन भगवान् हर ही उन रणप्रिय राजपूतोंके सबसे प्रधान उपास्यदेव हैं। इन्हीं परमपूज्य भूतनाथका प्रसाद पानेके लिये उपासनाके समय वे खूब मदिरा और रक्त चढ़ाते हैं। पूजाविधि समाप्त होने पर जिस समय हरके उपासकगण नशेमें चूर होकर नङ्गे पांव विकट चीत्कार करते हुए नाचते हैं उस समय सचा वीभत्स रस छा जाता है।

अन्त्येष्टि क्रिया।—आर्यवीर राजपूत जिस प्रकार अपने मुर्दोंका संस्कार करते हैं स्कान्दनाभ और शाकद्वीपवालोंमें भी मृतदेहोंके सत्कारित करनेके विषयमें प्रायः वैसाही विवरण पाया जाता है। इस क्रियाके सम्बन्धमें इन सब भिन्न भिन्न जातियोंमें जो समानता देख पड़ती है उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि यह प्रथा मानवजातिके किसी अत्यन्त प्राचीन वंशसे इन्होंने सीखी है। स्कान्दनाभवासियोंने जिस कालमें जिस रीतिसे अन्त्येष्टि क्रिया की, वह काल उसी रूपमें उनके पौराणिक ग्रन्थोंमें वर्णित हुआ। अर्थात् जिस समय उन्होंने मृतदेहोंको जलाया वह समय "अग्नियुग" और जिस कालमें उनको गाड़ा वह काल "मेघयुग" कहलाया।

स्कान्दनाभवालोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है, कि पहले वे मुर्दोंको जलानेके बदले गहरे गड्ढोंमें डालते अथवा पर्वतकन्दराओंमें फेंक देते थे, बाद ओडेनने उ-

नको अग्निसत्कारविधिकी शिक्षा दी। इस शिक्षाको विशेष मानकर उसी समयसे वे शवको आगमें जलाने और पीछे बची हुई राखपर ऊँची वेदिका बनाकर रखने लगे। कहते हैं कि मृत व्यक्तिके आगमें जलाये जानेके समय उसकी विधवा स्त्री भी उसके साथ जलती। हेरोडोटस कहता है कि ये प्रथाएं शाकद्वीपवालोंसे वहां-वालोंने सीखी थीं।

स्त्रीके सहमरणके विषयमें स्कन्दनाभके शेवियोंमें एक और नई प्रथा प्रचलित थी। मृत व्यक्ति यदि बहुतसी पत्नियोंवाला होता तो उनमें जो स्त्री सबसे बड़ी होती वही पतिका साथ दे सकती। कहते हैं कि “वोधेनके साथ जो सब महापुरुष स्कन्दनाभ देशमें रहते थे उनमें एकका नाम बलदार था। उक्त बलदार की मृत्यु होनेपर नन्नानाम्नी उसकी बड़ी पत्नी उसके साथ एक चिता पर जल कर मरी थी।” परन्तु धीरे धीरे इस प्रथापर स्कन्दनाभनिवासियोंकी अश्रद्धा होती गई, मृत व्यक्तिके शवको आगमें जलाकर उसकी प्रेतात्माको कष्ट पहुचाना उनकी समझमें युक्तिसङ्गत नहीं जान पड़ा, अतएव क्रमशः उन्होंने यह प्रथा त्याग दी।

सुप्रसिद्ध इतिहासकर्त्ता हेरोडोटसने लिखा है कि शाकद्वीपके जित लोग जब मरते थे तब उनके साथ उनके प्रिय घोड़े भी जलाये जाते थे और स्कन्दनाभवासी जितोंकी मृत्यु पर उनके अश्व उनके शवके साथ भूमिमें गाड़े जाते थे। ऐसा कर-नेका मूल कारण यह था कि उनके विश्वासके अनुसार वे बिना घोड़ेकी सवारीके पैदल परलोकमें भगवान् वोधेनके समीप नहीं पहुच सकते थे। यदि हम स्कन्द-नाभ और शाकद्वीपवासियोंके इस व्यवहारका राजपूतोंके व्यवहारसे मिलान करें तो इनमें बहुत कुछ सदृशता दिखाई देगी। आर्यवीर राजपूत अपने अस्त्रशस्त्रोंसे सुसज्जित होकर श्मशानको जाते हैं और यद्यपि उनका घोड़ा उनके साथ जलाया नहीं जाता तथापि वह उसी समय पुरोहितको समर्पण कर दिया जाता है।

जिस चिताकी अग्निमें ऐसा रूपलावण्य और वीरविक्रम जलकर राख हो जाता है वह चिता जिस स्थानमें जलाई जाती है वह स्थान बहुत पवित्र माना जाता है। उस पवित्र स्थानके सम्बन्धमें सभी जातियोंके लोगोंके मुखसे तरह तरह की आश्चर्यजनक बातें सुन पड़ती हैं। कहते हैं कि उन चितावेदिकाओंके अन्दर बड़ी बड़ी भयङ्कर भूतनियां सदा वास करती हैं और जो कोई हतभाग्य जान

बूझकर वेमतलब वहां जाता है उसका निस्तार नहीं होता; वे प्रेतिनियां उसे मारकर उसके शरीरका सारा रक्त पी लेती हैं। राजपूत लोग केवल वार्षिक पिण्डदानके समय उस प्रेतस्थानमें जाते हैं, और किसी समय वहां जानेका साहस उनको नहीं होता।

प्राय: सभी देशके लोगोंके मुखसे सुना जाता है कि भयानक श्मशानोंमें प्रतिदिन रातके समय एक प्रकारकी रोशनी देख पड़ती है। इस रोशनीके सम्बन्धमें स्कन्दनाभनिवासियोंके पौराणिक ग्रन्थोंमें लिखा है कि ओधेन स्वयं घूमती हुई लुकारियोंके द्वारा अपने वीर उपासकोंकी समाधिकी रक्षा करते हैं।

स्कन्दनाभनिवासी और आक्सरतीसके तीरपर रहनेवाले जित लोग अपनी जातिके मृत व्यक्तियोंकी भस्मराशि पर ऊंची वेदिका बनाते थे, आर्यवीर राजपूतों के सम्बन्धमें भी ठीक ऐसाही विवरण पाया जाता है।

जो राजपूत वीर समरक्षेत्रमें लड़कर वीरगतिको चले गये हैं उनकी पवित्र चितावेदिकाओंके ऊपरी भागपर उनकी पत्थरकी बनी प्रतिमूर्त्ति प्राय: लगाई गई है। राजस्थानके अनेक स्थलोंमें ऐसी पाषाणप्रतिमूर्त्तियां देख पड़ती हैं। वे प्रतिमूर्त्तियां अस्त्रशस्त्रसे सजी हे, घोड़ोंपर सवार हैं और उनके बाईं ओर उनकी सती अर्द्धाङ्गिनियां वर्त्तमान है। इनके अतिरिक्त उन युगल मूर्त्तियोंके दोनों ओर यश और गौरवके चिह्नस्वरूप उन्हीं पत्थरोंके साथ चन्द्र और सूर्यकी प्रतिमाएं भी लगी हैं।

अस्त्रपूजा।—घोड़ोंकी भांति अस्त्रशस्त्र भी वीराचारी राजपूतोंके आदरकी वस्तु हैं। ये दोनों वस्तुएँ उनके वीरधर्मकी प्रधान साधन हैं, अतएव समय समय पर वे भक्तिके साथ इनके आगे शिर झुकाते हैं। अपनी तलवार हाथमें लेकर वे शपथ करते हैं। शाकद्वीपके जित भी ऐसाही करते थे। जिस समय उक्त वीरजातिकी वीरताकपी आग सारे योरपखण्डमें फैल गई थी उस समय इस प्रथाकी विशेष उन्नति दिखाई देती थी। कहते हैं कि प्रचण्ड जित वीरोंने अटिला एथेन्स नगरमें बड़ी धूमधामसे अपने अस्त्रशस्त्रोंकी पूजा की थी। ख्यातनामा गिबन साहबने अपने रचे विशाल इतिहासग्रन्थमें इस विषयका बहुतही मनोहर वृत्तान्त लिखा है, परन्तु यदि साहब बहादुरने राजपूत वीरोंकी शस्त्रपूजा देखी होती तो

हम नहीं कह सकते कि उनका लेख और भी कितना सुन्दर हृदयग्राही और मनोहारी हो जाता।

अश्वमेध।—जड़ और चल जगत्में बहुतही कम ऐसी वस्तुएँ पाई जायँगी जिन्होंने किसी न किसी कालमें मनुष्योंके द्वारा किसी न किसी प्रकारकी पूजा न पाई हो। सूर्य, चन्द्र, ग्रहमण्डली, तलवार, पत्थर, नदनदी, सर्प सरीसृपादि और गाय प्रभृति पशु कभी न कभी प्रायः सब प्रकारके मनुष्योंके द्वारा पूजे गये हैं। परन्तु पशुओंमें घोड़ेसे बढ़कर कोई जन्तु पूजित नहीं हुआ। घोड़ा केवल विभिन्न पूजनीय पदार्थ समझा जाकर पूजित नहीं हुआ है, वरन् उसकी पूजाके साथ साथ एक और महान् पदार्थकी पूजा होती थी—अर्थात् सूर्यकी।

उषाकी शोभामयी गोद परित्याग कर रातकी अँधियारीको दूर करते हुए जिस दिन परम तेजोमय भगवान् भास्कर अज्ञानके अन्धेरेमें पड़े हुए मनुष्यके नेत्रोंके सामने आये उसदिन उनका वह तेज वह विराट्मूर्त्ति देखकर मनुष्य विस्मय आनन्द और भक्तिरससे भर गया, उसी दिनसे वह उनको देवोंका देव और जगत्का प्राण समझकर उनकी पूजा करने लगा। इसके बाद जिस दिन मनुष्यके ज्ञानचक्षु खुले—जिस दिन उसने जाना कि इसी सूर्यसे दिन, रात, सर्दी, गर्मी, बरसात आदि पैदा होते और जीवजन्तु तथा वृक्षलतादि बढ़ते और पुष्ट होते हैं—उस दिन उसके हृदयमें आनन्द और भक्तिरस उमड़ पड़ा और वह सहसा उच्चस्वरमें बोल उठा कि "जो महापुरुष जगत्का कर्त्ता है, जिसने हमको विवेक और बुद्धि दी है, उसका हम ध्यान करते हैं। फिर तो कान्तारके मैदानों, लीबियाके जलते हुए रेगिस्तानों, फारसके गिरिगह्वरों, गङ्गाके तीरों और अरिनोकोके विशाल महावनों आदि सभी स्थानोंमें सूर्यकी समान पूजा होने लगी।

जिस देशके लोगोंका जैसा आचारव्यवहार जैसी रुचि और जैसी रीतिनीति थी उस देशके लोगोंने उसीके अनुसार सूर्यदेवकी पूजाविधि निकाल ली। एशिया के बलपूजक और ब्रिटेन तथा गालके बलीनस देवके उपासकगण अपने उपास्यदेव के सन्तोषके लिये अपने भाईबन्दोंको बलि चढ़ाकर भीषण नरमेधका अनुष्ठान करने लगे। इधर मिथोरापूजक बेबिलोनके लोग बैल * और गङ्गा एवं आक्षर-

* बहुत प्राचीन कालमें भारतीय आर्यों के द्वारा गोमेध और नरमेध यज्ञ होता

तोलके किनारेके सूर्योपासक हिन्दू तथा जित घोड़ेका उत्सर्ग कर अपने उपास्य-देवकी तुष्टि करने लगे। इस स्थान पर यह अवश्य समझ लेना चाहिये कि एशिया के बल, ब्रिटेन और गालके बलीनस, तथा बेबिलोनके मिथोरा, भगवान् सूर्यके भिन्न भिन्न नाम मात्र हैं।

जित, अश्व, स्कन्दनाभनिवासी और राजपूत प्रत्येक भिन्न देशीय और भिन्न जातीय होने पर भी यह उत्सव एकही समय करते थे।—वह सब प्राचीन जातियोंके शास्त्रोंसे अनुमोदित समय "शीतकी संक्रान्ति" था।

आर्यवीर क्षत्रियगण जिस प्रकार बड़े आडम्बर और विविध विधिसे अश्वमेध यज्ञ करते थे उसका वर्णन वाल्मीकि और व्यासके अमृतमय काव्यग्रन्थोंमें स्पष्ट शब्दों में किया गया है। जिस दिन क्षत्रियवीर पृथ्वीराजके अधःपतनके साथ साथ भारतका अधःपतन हुआ उस दिनसे जातीय महायज्ञ (भारतीय आर्यनृपतियोंके इस आश्चर्य-प्रद वीराचारका चमकीला चिन्ह).एकबारही लोप हो गया है।—इस बातकी आशा करनेका किञ्चिन्मात्र भी साहस नहीं होता कि भविष्यमें फिर कभी यह वीरप्रथा इस दुःख दरिद्रतासे भरे निर्जीव देशमें प्रचलित होगी †।

छठा अध्याय।

राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंका संक्षिप्त विवरण।

इस बातकी आलोचना करनेके पश्चात् कि आर्यवीर राजपूतोंका आचारव्यवहार, समाजनीति, धर्मनीति और राजनीति संसारकी दूसरी प्राचीन जातियोंसे कहांतक मिलती जुलती है अब हम राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंका संक्षिप्त वि-

---

था। वे अपने उपास्य बलनाथके सामने यह यज्ञ करते थे। परन्तु हिन्दूशास्त्रकारों ने कलिकालके लिये गोमेध महायज्ञ एकदम निषिद्ध बतलाया है।

† अम्बरके प्रसिद्ध नरपति महाराज सवाई जयसिंहके द्वारा आर्यजातिका यह प्रसिद्ध अश्वमेध यज्ञ अन्तिम बार हुआ था, परन्तु टाड साहब अनुमान करते हैं कि उस समय यज्ञका घोड़ा नहीं छोड़ा गया था। यदि छोड़ा जाता तो राठौर लोग उसे पकड़ लेते, क्योंकि वेही उस समय विशेष पराक्रमशाली थे।

वरण लिखते हैं। समालोचनासे जहांतक पता लगा वहांतक जान पड़ता है कि ये सभी विषय एक आदिवंशधरसे लिये गये हैं।

यह बात पहलेही लिखी जा चुकी है कि भारतवर्षके प्राचीन आर्यनृपतिगण दो बड़े बड़े वंशोंमे उत्पन्न हुए हैं। पीछे एक और बहुत बड़ा कुल इन दो कुलोंमें संयुक्त हुआ।—इस तीसरे कुलका नाम "अग्निकुल" है। इस अग्निकुलके भूपतियोंने एक समय बड़े प्रतापके साथ भारतवर्षका शासन किया था, यहांतक कि सूर्य और चन्द्रकुलकी प्राचीन गौरवरूपी प्रभाके बहुत कुछ कम हो जानेपर भी अग्निकुलके नरपतियोंकी महिमा भारतभूमिमें खूब फैली थी। इन तीन विशाल राजवंशोंके साथ धीरे धीरे और भी तेंतीस छोटेछोटे राजकुल संयुक्त हुए। कदाचित् उक्त तेंतीस राजकुलोंमेंसे कईएक विशाल सूर्य और चन्द्रवंशकी शाखा प्रशाखाओंसे निकले और समय पाकर एक एक स्वतन्त्र राजवंश बन गये। इनमेंसे अधिकांश कुलोंकी प्रतिष्ठा करनेवाले, मुसलमानोंसे बहुत पहले भारतवर्षमें आकर बस गये थे। भारतभूमिकी उर्वरता और रमणीयता देखकर वे अपने देशकी ममता भूल गये और इस विदेशको उन्होंने स्वदेशसे अधिक उत्तम समझा। समय पाकर उन विदेशियोंके नायकोंने अपने अपने नामपर अलग अलग स्वतन्त्र कुल स्थापित कर लिये। उन छत्तीसों राजकुलोंका इतिहास क्रमसे आगे लिखा जाता है।

गहलोट वा गिह्लोट।—गिह्लोटगण अपनेको भगवान् रामचन्द्रका वंशधर बतलाते हैं। राजस्थानके चारणोंकी उक्तिसे भी उनके इस मतका पूर्ण रीतिसे समर्थन होता है। आगे लिखा जा चुका है कि महाराज सुमित्रके बाद दूसरे किसी सूर्यवंशी राजाका नाम किसी पुराणमें नहीं मिलता। परन्तु गिह्लोटोंने उक्त सुमित्रसे अपनी उत्पत्ति प्रमाणित कर दी है।

किस घटनामें पड़कर किस प्रकार इनके पूर्वपुरुष पवित्र कोशलराज्य छोड़नेपर बाध्य हुए थे और उसके छोड़नेके बाद कहां कहां उन्होंने अपने विशाल वंशवृक्षकी शाखा प्रशाखाएँ आरोपित की थीं यही सब बातें संक्षेपमें लिखना हमारे वर्त्तमान प्रस्तावका मुख्य उद्देश्य है। फिर इस कुलमें जो बड़े बड़े महिमान्वित नृपति हुए उनका विस्तृत विवरण मेवाड़के इतिहासके साथ वर्णित किया जायगा।

इस बातका अनुमान करना एकदम कठिन है कि किस समय गिह्लोटोंके आदिगोत्रपतिने पवित्र अयोध्या नगरी छोड़ी। हां जांच पड़ताल और अनुसन्धान के द्वारा जहांतक स्थिर हुआ है उससे एक प्रकार अनुमान कर लिया जा सकता है कि श्रीरामचन्द्रके कई पीढ़ियां पश्चात् सम्भवत. संवत् २०० वैक्रमीय (अथवा सन् १४४ ई०) में कनकसेन नामक कोई सूर्यवंशी राजा अपना पितृराज्य छोड़कर सौराष्ट्रमें आया और अपने पूर्वपुरुषोंका विशाल वंशवृक्ष यहां उसने आरोपित किया। राज्यसे वञ्चित होकर जिस विराटनगरमें पाण्डवोंने अपनेको छिपाकर अज्ञातवासका समय बिताया था, श्रीरामचन्द्रके वंशधर महाराज कनकसेनने भी सौराष्ट्र प्रदेशमें आकर उसी विराटपुरमें अपना नवीन राज्य स्थापित किया। उसके कुछ वर्ष बाद उसके एक वंशधर विजयसेनने उक्त प्रदेशमें विजयपुरके † नामसे एक नगर बसाया।

महाराज कनकसेनके वीर वंशधरोंने बहुत दिनोंतक वल्लभीपुरमें राज्य किया। यहां वे "बालकराय" नामसे परिचित हुए। किस हेतु वा किस कारणसे भगवान् रामचन्द्रके वंशधरोंने "बालकराय" उपनाम रखा इसका अनुमान करना कठिन है। कुछ भी हो, इस उपाधिको उन्होंने प्रायः एक सहस्र वर्षतक धारण किया।

कालके कभी न टलनेवाले प्रभावके अनुसार सौराष्ट्रमें सूर्यवंशी बालकरायोंके पाव उठनेका समय निकट आया। आखिर खृष्टीय पांचवां शताब्दिके अन्तिम भागमें उनका अन्तिम राजा शिलादित्य म्लेच्छोंके साथ युद्ध करके मारा गया और उसके साथही उस प्रदेशसे सूर्यकुलके वंशवृक्षकी जड़ उखड़ गई। इसके बाद वह जड़ उसके निकटही ईडर नामक स्थानमें जाकर जमी। वहां कुछ कालतक इस वंशके ग्रहादित्य नामक एक राजाने राज्य किया। इसी ग्रहादित्यसे कनकसेनके वंशधर "ग्रहलोट" अथवा "गिह्लोट" कहलाये।

कुछ वर्षोंके उपरान्त गिह्लोटगण ईडर छोड़कर आहर नामक स्थानमें आ बसे और उसी स्थानके अनुसार वहां जाकर उन्होंने गिह्लोटके बदले आहर्य नाम रख लिया और कुछ समयतक वे इसी नामसे परिचित रहे, परन्तु पीछे इस नये नामके स्थानमें उन्होंने सीसोदीय नाम प्रचलित किया। यही सीसोदीय नाम अन्त

† यह स्थान सदासे विजयपुर विराटगढ़ कहा गया है।

में बलवान् हो उठा। क्या सम्पद्में, क्या विपद्में, क्या अविरामसें, क्या विश्रामसें, फिर कभी यह नाम नहीं बदला। एक समय जिन आर्य्यनृपतियोंने अपने प्रचण्ड प्रतापसे सौभाग्यकी सबसे ऊँची सीढ़ी और भारतीय नरेशोंके शीर्षस्थान पर चढ़कर जिस सीसोदीय नामको गौरव और महत्वका आदर्श बना दिया था आज दुर्भाग्यवश नीचेसे नीचे अन्धेरे कूएँमें गिरकर भी उनके अभागे वर्त्तमान वंशधर उसी शीसोदीय नामसे परिचित हो रहे हैं!

यद्यपि "सीसोदीय" नाम सबसे अधिक बलवान् हो गया है तथापि राजस्थानके चारणगण इसे गिह्लोटकी एक शाखा कहकर इसका वर्णन करते हैं।

गिह्लोटकुल सब मिलाकर चौबीस शाखाओंमें विभक्त है। इन चौबीस शाखाओंमें आहर्य्य और सीसोदीय विशेष प्रसिद्ध हैं।

यदु।—यद्यपि महाराज ययातिने अपने ज्येष्ठ पुत्र यदुको भारतका पूर्ण राजा न बनाकर अपने छोटे पुत्रको बनाया था तथापि समय पाकर यदुके ही वंशधर विशेष फैले।

श्रीकृष्णके शरीरान्तके पश्चात् पाण्डवगण महाप्रस्थानको निकले, कृष्णके वंशधरोंने भी उनका साथ दिया, परन्तु अधिक दूर आगे न बढ़कर वे पञ्चनदके दोआब * नामक पहाड़ी देशमें चले गये और कुछ दिन वहीं रहे। वहांसे भी बहुत सी बातोंकी असुविधा देख कर उनको सिन्धुनदके पार जबूलिस्तान नामक स्थानमें चला जाना पड़ा। यहां अपना राज्य स्थापित करनेकी अभिलाषा कर उन्होंने प्रसिद्ध "ग़ज़नी" नगरी बसाई। इसी जबूलिस्तानमें यादवोंका अधिकार दृढ़ताके साथ जमा, किसी समय वह (अधिकार) सुदूर समरकन्द तक बराबर पहुँच गया था। परन्तु कर्मके अटल लेखके अनुसार वे सदैव वहां राज्य नहीं करने पाये। भट्टग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि वहांसे आकर पुनः भारतवर्षका आश्रय ग्रहण करने पर वे बाध्य हुए।

किस कारण श्रीकृष्णके वंशधरोंने पुनः भारतमें प्रवेश किया, इस बातका स्थिर करना असम्भव है। हां इस विषयमें भिन्न भिन्न ऐतिहासिकोंने जो भिन्न

---

* इन लोगोंने जिस पहाड़ी स्थानमें आश्रय लिया था वह सिन्धुनदके दोआबमें है। अब भी वहांके निवासी उसे "यदुका डुङ्ग" कहते हैं।

भिन्न मत प्रकाशित किये हैं उन सभोंका मतलब लेनेसे केवल इतना अवश्य अनु-मान किया जा सकता है कि सिकन्दरके बादके ग्रीक नृपतियोंने उनको उस प्र-देशसे हटा दिया था। अस्तु, कुछ भी कारण हो, चारणोंकी ग्रन्थावली पढ़नेसे यह बात स्पष्ट विदित हो जाती है कि किसी दैवी दुर्घटनासेही यादवोंको पुनः भारत-वर्षमें आना पड़ा था।

भारतभूमिमें पुनः आकर यादवगण पञ्जाबमें रहने लगे और वहां उन्होंने शालिवाहनपुर नामक एक नगर स्थापित किया, परन्तु इस नये बसाये हुए नगर में वे बहुत दिन नहीं रह सके, बहुत शीघ्र शत्रुओंके द्वारा हटाये जाकर राज-स्थानमें आकर रहने पर बाध्य हुए। लङ्गह जोहियां और महिल प्रभृति जातियां उस समय वहां वास करती थीं। यादवोंने उनको वहांसे हटाकर अपना अधि-कार जमाया और धीरे धीरे अपने आधिपत्यका विस्तार किया। समय पाकर उन्होंने अनेक नगर स्थापित किये। उन नगरोंमें तेनोत दरवाल और जैसलमेर * अधिक प्रसिद्ध हैं।

जिस समय यादव लोग जबूलिस्तानसे पुनः भारतमें आये उस समय वे छोटे छोटे कई गोत्रोंमें विभक्त थे जिनमें भट्टी विशेष पराक्रमी थे। समय पाकर भट्टी गोत्रवालोंने यादवोंके अन्य गोत्रवालोंकी अपेक्षा अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की।

यदुकुलकी एक दूसरी प्रसिद्ध शाखाका नाम जारिजा है, भट्टी के बाद उक्त कुलके ऐतिहासिक ग्रन्थोंमें इसीने स्थान पाया है। इन दोनों शाखाओंके विषयमें एकही प्रकारका वर्णन मिलता है, दोनोंही श्रीकृष्णसे निकली थीं। यदुकुलका ध्वंस होनेके पश्चात् ठीक एकही समय दोनों शाखाओंके अधिनायकोंने बचे हुए यादवोंके साथ भारतके पश्चिम प्रदेशकी ओर यात्रा की, परन्तु भट्टीकी भांति जा-रिजा शाखाके लोग बहुत दूर तक अपने राज्यका विस्तार नहीं कर सके। सिन्धु-नदके पश्चिम किनारे पर शिवस्थान नामक एक गांव था, बहुतोंका अनुमान है कि जारिजाओंने वहीं अपना आधिपत्य स्थापित किया। यह बात सिकन्दरके समयके

* संवत् १२१२ (सन् ११५६ ई०) में जैसलमेर स्थापित हुआ था। इस नगर के स्थापित करनेसे पहले किसी प्राचीन जातिसे लोद्रवापाटण नामक नगर ले-कर वे कुछ दिन वहीं रहे थे।

इतिहासलेखकोंके वर्णनोंसे एक प्रकार स्पष्ट प्रमाणित होता है कि उन्होंने बड़े प्रतापके साथ बहुत दिनोंतक वहां राज्य किया। कहा जाता है कि मसिडोनियाके वीरोंने जिस समय भारतवर्षपर चढ़ाई की थी उस समय जारिजाकुलके शाम्ब नामक राजाने युद्धक्षेत्रमें उनका सामना किया था। महाराज शाम्बके झण्डेके नीचे जो सैनिक एकत्रित हुए थे उनमें अधिकांश हरिकुलसे उत्पन्न थे। यद्यपि उस समय उनकी अवस्था अत्यन्त हीन होगई थी तथापि अपने पूर्वपुरुषोंके प्राचीन गौरवका परिचय देनेकी चेष्टा करनेमें उन्होंने कोई त्रुटि नहीं की। उनकी यह चेष्टा बहुत कुछ सफल भी हुई।

महाराज शाम्ब शामनगरमें राज्य करते थे। ग्रीक इतिहासकर्त्ताओंने उस शामनगरको सीनगढ़के नामसे लिखा है।

इसमें सन्देह नहीं कि व्यर्थ विप्लव होनेके कारण भगवान् श्रीकृष्णका वंश बहुत घट गया था, परन्तु उस कालस्वरूप भीतरी विग्रहसे जो यादव अपने जीवनकी रक्षा कर सके थे उनकी संख्या भी कम नहीं थी। उनमेंसे प्रत्येकका वंश समय पाकर कितनीही शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त होकर आज भारतके अनेक स्थानोंमें फैला हुआ है। यदुकुल आठ शाखाओंमें विभक्त है, जिनमें भट्टी और जारिजा विशेष प्रतिष्ठित हैं।

तुआर।—बहुत लोग तुआरको यदुकुलकी एक शाखा बतलाते हैं, किन्तु चन्दकविने इनकी वर्णना पाण्डुकुलसे इनकी उत्पत्ति मानकर की है। इसका अनुमान करना कठिन है कि इन दोनोंमें कौन बात अधिक युक्तिसिद्ध है, क्योंकि इस कुलके नामकरणके सम्बन्धमें हमको कोई बात नहीं मिली। जो हो, यदि इन विषयोंको छोड़कर इनकी ख्याति और प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें भलीभांति विचार किया जाय तो इनको राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें एक ऊँचा आसन दिये बिना नहीं रहा जायगा।

वह प्रतिष्ठा और ख्याति जिन दो महापुरुषोंने अर्जित की थी उनके पवित्र नाम आज भी प्रत्येक हिन्दूसन्तानकी जपमालाके समान हो रहे हैं और आज भी अभागे हिन्दू उन पवित्र नामोंका उच्चारण करते करते अपनी वर्त्तमान दुरवस्था भूल जाते और प्राचीन पर्दा पाकर अपने अज्ञानवश उसी स्वर्गीय सुखके पूर्व

राजत्वकालमें घूमने लगते हैं।—जब काल भारतका स्वर्णयुग था, उस समय भारतने अनन्य पण्डितवर्गोंके द्वारा अलङ्कृत होकर समस्त जगत्‌के शीर्षस्थान पर अपना शासन जमाया था। अधिक क्या कहें—तुआरकुलके उन दो महापुरुषोंके शुभ चरित्रके गुणसे दो नवीन युग उपस्थित हो गये थे। उन दोनों महापुरुषोंमें एक हिन्दूराजचक्रवर्ती उज्जयिनीपति महाराज विक्रमादित्य थे और दूसरे हिन्दू-राजकुलतिलक दिल्लीश्वर महाराज अनङ्गपाल। कुरुक्षेत्रके महारणसमुद्रमें आर्य-गौरवरूपी सूर्यके डूब जानेसे भारतमें बहुत दिनोंतक विषादरूपी अंधियारी छैली रही, किन्तु उस गहरी अन्धकारराशिको हटाकर उस अस्त होते हुए आर्यगौरव-सूर्यका आदर्शस्वरूप कौन महापुरुष इन्द्रावती जैसी अवन्ती नगरीके सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था? किसकी कीर्त्तिकौमुदी और गौरवगरिमाने सारे भारतवर्षको उज्ज्वलित कर दिया था? किसकी महासभाके पण्डितगण भारतमाताके कण्ठके अमूल्य रत्नहारकी भांति गुंथे हुए थे?—कौन नहीं कहेगा कौन नहीं स्वीकार करेगा कि वह महापुरुष राजाधिराज महाराज विक्रमादित्य था? महाराज विक्रमादित्यका जिस कुलमें जन्म हुआ था उसको विलीन हुए बहुत दिन हो गये, उस कुलका सामान्य चिह्न भी अब बाकी नहीं है। जिस दिन इस पुण्यधाम भारतवर्षमें विक्रमादित्यका जन्म हुआ उसदिन मानो एक स्वर्णयुगकी उत्पत्ति हुई। उस दिनसे आजतक कितनीही शताब्दियां बीत गईं, भारतभूमिकी छाती पर कितने विप्लवस्रोत बह गये, कितने विदेशी और विजाति नरपति भारत-सन्तानके भाग्यचक्रको झुकाकर कहांसे कहां चले गये, उनकी नामावलि और कीर्त्ति प्रायः उन्हींके साथ चली गई, परन्तु प्रातःस्मरणीय महाराज विक्रमादित्यका पवित्र नाम कौन भूल गया? क्या कोई कभी भूल सकता है?—इसके विषयमें कुछ नहीं कहा जा सकता। जिस दिन संसारसे संस्कृतशास्त्रका नाम उठ जायगा, जिस दिन महाराज विक्रमादित्यद्वारा प्रतिष्ठित संवत् भारतके कालचक्रके एक एक घुमावके बतलानेसे रुक जायगा, उस दिन भी वह पवित्र नाम भारतवासी भूल जायँगे या नहीं सो नहीं कह सकते। उस दिनका ध्यान करनेसे भी हृदय कांप उठता है—सिरसे पैर तक सभी अङ्ग थहरा उठते हैं।

महाराज अनङ्गपालके विषयमें कुछ बातें पीछे लिखी जा चुकी हैं, इस जगह

उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। केवल इतनाही लिख देना उचित होगा कि इस महापुरुषने गिरे और मरते हुए इन्द्रप्रस्थ नगरमें फिरसे जीवन डाल दिया था। यह महाराज विक्रमादित्यसे आठ शताब्दियां पश्चात् उत्पन्न होकर संवत् ८४८ (सन् ७९२) में इन्द्रप्रस्थके सिंहासन पर बैठा था। राज्यासन पर बैठनेके साथही अपने पूर्व गौरवका उद्धार करनेमें यह बहुत कुछ समर्थ हुआ था।

महाराज अनङ्गपालके पश्चात् क्रमशः बीस राजे उसके वंशमें उत्पन्न होकर इन्द्रप्रस्थकी गद्दी पर बैठे। अन्तिम राजाका नाम भी अनङ्गपाल था। इस दूसरे अनङ्गपालके कोई पुत्र नहीं था, अतएव अपने दौहित्र पृथ्वीराज चौहानको संवत् १२२० (सन् ११६४) में राज्यका भार सौंपकर वह राज्यकार्यसे पृथक् हो गया। इसके बाद जिस दिन इस संसारसे उसका सम्बन्ध छूटा उसी दिन उसके साथ साथ प्रसिद्ध तुआरकुलकी भी समाप्ति हो गई ⁂।

राठौर।—इस प्रसिद्ध कुलकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें बहुत तरहकी बातें सुन पड़ती हैं। ये लोग श्रीरामचन्द्रके ज्येष्ठ पुत्र कुशसे अपना उत्पन्न होना प्रमाणित करते हैं। यदि इनका मत युक्तिसिद्ध समझा जाय तो अवश्य कहना पड़ेगा कि राठौर लोग पवित्र सूर्यकुलसे निकले हैं, किन्तु राजस्थानके भट्टकवियोंने इनको इस उच्च सम्मानसे सम्मानित न करके दूसरी रीतिसे इनका उत्पन्न होना प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है। वे कहते हैं कि "राठौर लोग सूर्यकुलतिलक महाराज रामचन्द्रके ज्येष्ठ पुत्रसे अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं, परन्तु यह उनका भ्रम है। असलमें वे महर्षि काश्यपके वंशके एक राजाके वीर्यसे किसी दैत्यकुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं।" यदि यह मत ठीक समझा जाय तो राठौर लोग पवित्र आर्यकुलके लिये जो उचित सम्मान है उससे सम्मानित नहीं किये जा सकते; परन्तु यह मत हमारी समझमें उचित और न्यायपूर्ण नहीं जान पड़ता।

राठौरोंको यदि सूर्यकुलसे उत्पन्न न मानें तोभी पवित्र आर्यकुलोचित सम्मान

⁂ एक समय तुआरकुलके अधिकारमें जो विशाल राज्य था इस समय उसके केवल दो सामान्य नगर मात्र उस कुलके अन्तिम गौरवके चिह्नस्वरूप वर्त्तमान हैं। प्रथम तुआरगढ़ (जो चम्बल नदीके दक्षिण किनारे पर है) और द्वितीय पाटन तुआरवती।

से उन्हें वञ्चित नहीं कर सकती। विशेषतः चन्द्रवंशके एक कुलमें उनको स्थान दिया जा सकता है। राजर्षि विश्वामित्रसे दो पीढ़ियां पहले कुश नामक जो राजा हो गया था उसके कुलमें ये लोग स्थान पा सकते हैं।

भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि राजर्षि विश्वामित्रकी जन्मभूमि गाधिपुर * राठौरों की आदिनिवासभूमि थी और खृष्टीय पांचवीं शताब्दिके प्रारम्भमें वे वहांके सिंहासन पर आरूढ़ थे, इससे पहले उनके विषयमें कोई विवरण नहीं मिलता, जो कुछ मिलता भी है उसमें बहुत मिलावट जान पड़ती है, अतएव उस मिलावटसे असल बातका पता लगाना अत्यन्त कठिन है। अस्तु, यद्यपि राठौर लोग अपनेको सूर्यवंशी बतलाते हैं परन्तु इस विषयमें कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता।

अतएव खृष्टीय पांचवीं शताब्दिको राठौरोंके ऐतिहासिक जीवनका प्रथम युग कहना अनुचित नहीं होगा। क्योंकि इसी समय उनका वृत्तान्त पुराणोंसे निकल कर ऐतिहासिक जगमें आया। इसी समयसे उनका जीवनचरित स्पष्ट प्रकट होता है। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि शहाबुद्दीनके भारत पर चढ़ाई करनेके समय राठौर लोग समस्त भारतमें अपना आधिपत्य जमानेकी इच्छासे देहलीके तुआर और अणहिलवाड़ाके बालकरायोंसे घोर वैरभाव प्रकट कर रहे थे।

इस संसारमें सभी अनित्य है। राज्य, धन, गौरव, कुछ भी स्थायी नहीं। किन्तु इसी अनित्य और अचिरस्थायी राज्यके लिये राठौरोंने जो महा अनर्थ किया उससे उन सबका नाश तो हुआ ही, उपरसे समग्र भारतवासियोंके हाथ मुसलमानोंकी गुलामीरूपी बेड़ीसे जकड़ लिये गये। यदि वे इस अनर्थ गौरवके लालचमें न पड़ते तो क्या मुसलमान भारतवर्षको अपने अधीन कर सकते?

राठौरोंके इसी सर्वनाशकारी आधिपत्यके लोभके कारण भारतका अधःपतन हुआ, वीरवर पृथ्वीराजको शत्रुओंके हाथ पड़ना पड़ा, समरकेसरी समरसिंहने संग्रामस्थलमें अपना शरीर त्याग किया, स्वदेशद्रोही पापी जयचन्द गङ्गामें डूबकर अपनी विश्वासघातकता और घृणित कापुरुषताके उचित परिणामको पहुँचा।

जयचन्दका शिवजी नामक एक पुत्र था। इसने अपने पिताके राज्यसे भागकर मारवाड़के मरुप्रान्तमें शरण ली। वहां पुरीहरोंका मुन्दर नामक एक

* कन्नौज।

प्राचीन नगर था। उस समय वह नगर बहुत टूटी फूटी अवस्थामें था। शिवजीने इस भग्न और विध्वस्त सुन्दर नगरका जीर्णोद्धार करके वहां अपना राज्य स्थापित किया। काल पाकर राजस्थानके उस मरुप्रान्तमें विशाल मारवाड़ राज्य स्थापित हुआ जिसने देखतेही देखते बड़ी विराट् मूर्त्ति धारण करली। राठौरवीर शिवजीके वंशधरोंने क्रमशः बड़ा बल अर्जन किया और वे बड़े पराक्रमशाली हो गये। एक समय उनके लाखों वीर भाइयोंने अपने हृदयका रक्त बहाकर मुगल बादशाहोंकी सहायता की थी, परन्तु आज उनकी वह वीरकीर्त्ति और तेजस्विता केवल स्वप्नकी कहानीसी रह गई है, उस महावीर शिवजीके वर्त्तमान वंशधरोंके देखनेसे इस बातका तनिक भी परिचय नहीं मिलता कि इनके पूर्वपुरुष बड़े गौरववाले रहे होंगे †।

कुशावह।—इस कुलकी उत्पत्ति भगवान् श्रीरामचन्द्रके पुत्र कुशसे हुई है। ऐसा प्रसिद्ध है कि कोशलराज्यसे दो शाखाकुल निकले, जिनमेंसे एकने पञ्जाब देशमें आकर प्रसिद्ध लाहौर नगर बसाया, दूसरेने बहुत आगे न बढ़कर सोनके तीरपर रोटस्‌की स्थापना की।

जिन लोगोंने पञ्जाब प्रदेशमें अपना निवासस्थान बनाया था उन्होंने कुछ दिन लाहौरमें रहकर नरवर नामक एक दूसरा नगर स्थापित किया। कहते हैं कि यह नरवर प्रसिद्ध नलराजकी जन्मभूमि है। वहां इस सुप्रसिद्ध राजाके वंशधरोंने निश्चिन्त भावसे बहुत दिनोंतक राज्य किया था, यहांतक कि तातारियों और मुगलोंके शासनसमयमें भी वे अपने पूर्वपुरुषोंके उसी प्राचीन राजासन पर विराजमान थे। बहुत दिनोंतक राज्यका भोग करनेके बाद नलके वंशधरगण यवनों और मरहठोंके द्वारा राज्यच्युत किये गये।

महाराज कुशके वंशधर बहुत कालतक नरवरमें एकसाथ रहे। पीछे खृष्टीय दशवीं शताब्दिके मध्यभागमें वे दो भागोंमें विभक्त हो गये। उनमेंसे एक शाखा

† राठौरकुल धन्धुल, भदैल, चाकित, दुहरिया आदि चौबीस शाखाओंमें विभक्त है। इस कुलके गोत्राचार्य गौतम हैं। माध्यन्दिनी शाखा, शुक्राचार्य गुरु, गरुपाठ अग्नि तथा पंखिनी इसकी देवी हैं। टाड साहब इनका गौतम गोत्र देखकर इनको बौद्धधर्मावलम्बी अनुमान करते हैं।

वहीं राज्य करने लगी, दूसरोंने अपना देश त्यागकर अनार्य और असभ्य भीलोंके स्थानमें रहना आरम्भ किया और फिर अपनी चेष्टासे उनको भगाकर उस स्थानमें अजमेर नामक नगर स्थापित किया।

भीलोंके इस अनार्य देशके मध्यभागमें महाराज कुशके वंशधरोंने जो अजमेर नगर प्रतिष्ठित किया वह राजस्थानके अन्यान्य नगरोंके साथ साथ धीरे धीरे विशेष प्रसिद्ध हो गया। यद्यपि अकबरके शासनकालसे बहुतसे राजपूतकुल क्रमशः अधःपतनको प्राप्त हुए थे, परन्तु अजमेरके कुशावतोंने उस समय अपने गौरव और प्रतिष्ठासे सबसे उच्च आसन प्राप्त किया था।

अग्निकुल।—जगमान्य सूर्य और चन्द्रवंश जिस भांति सूर्य और चन्द्रसे उत्पन्न हुए उसी भांति अग्निकुलके सम्बन्धमें भी प्रसिद्ध है कि उसकी उत्पत्ति अग्निसे हुई। हिन्दूकुलके आचार्यों के मतके अनुसार इसका वंशवृक्ष चार शाखाओंमें बटा हुआ है। पहली शाखा—प्रमार; दूसरी—पुरीहर; तीसरी—चौलुक सोलङ्की; और चौथी—चौहान।

कहते हैं कि जिस समय धर्मवीर पारसनाथने * प्रकट होकर सारे हिन्दू-समाजमें घोर विप्लव फैला दिया था उसी समय अग्निकुल उत्पन्न हुआ था। उस

* टाड साहबके मतके अनुसार सब मिलाकर चार बुधोंका होना प्रमाणित होता है। वे कहते हैं कि ये चारों बुध एकेश्वरवादी थे और उन्होंने मध्य एशिया से इस धर्मको लाकर भारतमें उसका प्रचार किया। उनके धर्मशास्त्र एक तरह-की वर्णमालामें लिखे हैं। सौराष्ट्र जैसलमेर और विशाल राजस्थान प्रदेशके जिन जिन स्थानोंमें बौद्ध और जैनी पहले रहते थे टाड साहबने वहां स्वयं घूम घूमकर उनके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक ताम्र और शिलालेख प्राप्त किये थे। इन चारों बुधोंके नाम इस प्रकार हैं—

प्रथम बुध (चन्द्रवंशका प्रतिष्ठाता ईसामसीहसे अनुमान २५५० वर्ष पहले) दूसरा नेमिनाथ (जैनियोंके मतसे बाईसवां) ईसासे ११२० वर्ष पूर्व। तीसरा पारसनाथ वा पार्श्वनाथ (जैनियोंके अनुसार तेईसवां) ईसासे ६५० वर्ष पहले। चौथा—महावीर (जैनियोंके मतसे चौबीसवां) ईसासे ५३३ वर्ष पूर्व।

बौद्ध धार्मिक सङ्घर्षके समय जैनियोंके आक्रमणसे अपने धर्मको रक्षा करनेके अभिप्रायसे ब्राह्मणोंने उक्त अग्निकुलकी सृष्टि की।

राजस्थानमें आबू अथवा आर्बुध नामक एक प्रसिद्ध पर्वत है। इस पर्वतकी सबसे ऊँची चोटी पर यह भीषण धर्मविप्लव हुआ। कहा जाता है कि पहाड़ी शिखरके ऊपर ब्राह्मणोंने अग्निकुण्ड बनाकर वीर अग्निकुलकी सृष्टि की। वह पवित्र अग्निकुण्ड जिस स्थानमें बनाया गया था वह स्थान आज भी देख पड़ता है। बहुतोंका अनुमान है कि ब्राह्मणोंने जिनमें दैवीशक्ति वर्त्तमान थी नास्तिकों के आक्रमणसे सनातनहिन्दूधर्मकी रक्षाके लिये उन अग्निवीरोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया और उन्हींकी सहायतासे वे उस भयानक धर्मयुद्धमें प्रवृत्त हुए।

ब्राह्मणोंके अद्भुत तपोबलसे पापनाशिनी आगसे जो वीरकुल उत्पन्न हुआ उसने बहुत दिनोंतक अपना प्रचण्ड प्रताप और दृढ़ धर्म्मानुराग अटल रखा, परन्तु मुसलमानोंकी चढ़ाईके समय इस कुलके अधिकांश लोगोंने ब्राह्मण धर्म्म छोड़ कर जैनियों अथवा बौद्धोंके धर्म्मका अवलम्बन किया।

प्रमार।—प्रसिद्ध अग्निकुलमें सबसे पहले प्रमार शाखावालोंने प्रतिष्ठा प्राप्त की। सोलङ्की और चौहानकुलकी भांति यद्यपि ये विशेष समृद्धिवान् और पराक्रमी नहीं हो सके तथापि तीनों कुलोंका इतिहास पढ़नेसे स्पष्ट विदित होता है कि सबसे प्रथम प्रमारोंने ही राजाकी उपाधि पाई। और तो क्या, अग्निकुलकी प्रथम शाखावाले (अर्थात् पुरीहर) भी बहुत दिनोंतक इनके अधीन सामन्त राजाकी भांति रहे थे।

कहते हैं कि सबसे पहले प्रमारोंने वीरश्रेष्ठ कार्त्तवीर्यार्जुनकी प्राचीन माहिष्मती नगरीमें प्रतिष्ठा प्राप्त की। उक्त प्रसिद्ध माहिष्मती पुरीमें कुछ कालतक राज्य करके उन्होंने विन्ध्य पर्वतके शिखर पर धारा और माण्डु नाम्नी दो नगरियां स्थापित कीं। बहुतोंका कथन है कि प्रसिद्ध उज्जयिनी नगरी भी उन्हींकी बसाई हुई है *।

* जो नगर प्रमारोंके अधिकारमें थे उनमें नीचे लिखे अधिक प्रसिद्ध हैं। यथा—महेश्वर (माहेश्वती), धारा, माण्डु, उज्जयिनी, चन्द्रभागा, चित्तौड़, आबू, चन्द्रावती, मऊ, मैदान, प्रमारवती, अमरकोट, बिखार, लोहदुर्वा और पाटन। इनमें कई नगर उनके द्वारा जीतकर अधिकारमें किये गये थे और शेष उन्होंने स्वयं बसाये थे।

प्रमारकुलका राज्य नर्मदा नदी पार करके उसके दक्षिण ओर बहुत दूरतक फैल गया था। भट्टग्रन्थोंमें लिखा है कि संवत् ७७० (सन् ७१४) के प्रारम्भमें राम नामक एक प्रतिष्ठावान् राजा इस कुलमें उत्पन्न हुआ; उसने तैलङ्ग देशमें एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। चन्दकविने उसके सम्बन्धमें लिखा है कि राम प्रमार भारतवर्षका प्रधान राजा था और बहुतसे राजपूत नृपति उसकी अधीनतामें थे ¶; परन्तु उसका परलोक होनेके बादही उन नृपतियोंने अलग अलग स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिये। गिह्लोट कुलके प्रकट होनेके समय प्रमारोंका पूर्व गौरव बहुत घट गया था।

परन्तु प्रमार कुलमें भोज नामक जो बड़ा पराक्रमशाली राजा उत्पन्न हुआ था उसीकी कीर्त्तिकौमुदी और शुभ्रयशसे वह कुल उज्ज्वलित हुआ। हिन्दूराज-चक्रवर्त्ती महाराज विक्रमादित्यकी भांति इसकी राजसभा भी नवरत्नोंसे विभूषित रहती थी। इसके राजत्वकालमें संस्कृत भाषाकी पूर्ण उन्नति हुई थी। इसी उन्नति के कारण भोजका नाम आजतक समस्त हिन्दूसन्तानकी जिह्वापर है। जबतक संसारमें अमृतोपमा संस्कृत भाषाका पठन पाठन वर्त्तमान रहेगा कदाचित् तबतक भोजका पवित्र नाम कोई नहीं भूलेगा—तबतक उसका नाम परमपूज्य आर्य-नृपतियोंकी पवित्र नामावलिसे किसी रीतिसे पृथक् नहीं होगा।

प्रमारकुलमें तीन भोजका * नाम पाया जाता है। तीनों विशेष विद्यानुरागी

¶ चन्दकविके प्रसिद्ध ग्रन्थमें लिखा है कि तैलङ्ग देशके महाराज राम प्रमारने सिंहासन पर आरूढ़ होकर राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंको भूमिवृत्ति दी थी। तुआरोंको देहली, सौरोंको पाटण, चौहानोंको अम्बर, कामध्वजोंको कन्नौज, पुरीहरोंको राजपूताना, यदुवंशियोंको सुराट्, जावलोंको दाक्षिणात्य, पारखोंको कच्छ, कोहरोंको कालिवार और रायपुहारोंको सिन्धुदेश देकर उसने सबको अपने अधीन कर लिया था।

* एक शिलालेखसे प्रकट होता है कि संवत् ११०० (सन् १०४४) में तीसरा भोज राजसिंहासन पर बैठा था, इधर भोजप्रबन्ध नामक ग्रन्थमें भी यही समय निरूपित हुआ है, अतएव वह शिलालिपि विश्वासके योग्य मानी जा सकती है। भोजप्रबन्धमें यह भी लिखा है कि प्रथम और द्वितीय भोज ६११ तथा ७२१ संवत्में हुए थे।

और पराक्रमशाली थे, परन्तु इस स्थानमें जिस लोकका नाम निर्दिष्ट हुआ है उसका निराकरण करना कठिन है।

जिस चन्द्रगुप्तकी महनीय कीर्त्ति और विपुल गौरवकी बातें भारतके इतिहासमें स्वर्णाक्षरोंमें लिखी वर्त्तमान हैं, जिसको दिग्विजयी सिकन्दरका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी कहकर ग्रीक ऐतिहासिकोंने अपने इतिहासोंमें वर्णित किया है, उसने प्रमारकुलकी सबसे प्रधान शाखा मौर्य गोत्रमें जन्म ग्रहण किया था, किन्तु भट्ट-कवियोंके वंशवर्णनसम्बन्धी ग्रन्थोंमें चन्द्रगुप्तकी उत्पत्ति तक्षककुलसे बताई गई है। इसके अतिरिक्त प्रमारकुलके सम्बन्धमें जो प्राचीन शिलालेख आविष्कृत हुए हैं उनके देखनेसे विदित होता है कि उक्त मौर्यवंशका प्रधान पुरुष तक्षक कुलमें उत्पन्न हुआ था।

शालिवाहन नामक जिस महावीर बली पुरुषने हिन्दूराजचक्रवर्त्ती महाराज विक्रमादित्यके राज्यमें उथल पुथल मचा दिया था वह भी तक्षक कुलमें उत्पन्न हुआ था। विक्रमादित्यको राज्यच्युत करके विजयी शालिवाहन उज्जयिनीके सिंहासन पर बैठा और उनके प्रतिष्ठित संवत्को दक्षिण देशसे उठाकर उसकी जगह उसने अपने नामका संवत्सर जारी किया।

जिन प्रमारोंने एक समय अपने दुर्दम प्रताप और गौरवके प्रभावसे राजपूत राजाओंमें सबसे ऊँचे स्थानका अधिकार पाया था आज दुर्भाग्यसे एक बात भी ऐसी नहीं है जिससे उनके प्राचीन प्रताप और गौरवका परिचय मिल सकता हो। भारतभूमिके अनेक स्थानोंमें उनकी जो कीर्त्ति स्थापित थी आज निठुर कालके कठोर हाथोंसे वह विध्वस्त और चूर्णविचूर्णित अवस्थामें पड़ी है। यदि उनके प्राचीन गौरवका कुछ भी प्रतिबिम्ब देख पड़ता है तो बस उन्हीं टूटी फूटी इमारतोंके बचे हुए ढेरोंमें!—इस संसारमें कालका माहात्म्य कौन जान सकता है? कालही सृष्टिकर्त्ता, कालही संहारकर्त्ता है और कालही सुख दुःखका प्रधान नेता है। आज जो अमित धनका अधिकारी होकर मारे दर्प और अहङ्कारके समस्त संसारको तिनकेके समान तुच्छ समझता और अपने अधीनोंके प्रति पशुओंका व्यवहार करता है सम्भव है कल अथवा दो दिन बाद उसीका मस्तक कालके अलङ्घनीय नियमके अनुसार शरीरसे अलग होकर श्मशानभूमिमें लुढ़कता दिखाई दे और

जीवे ध्वार सिंह इत्यादि निकृष्ट जन्तु उसपर चढ़े हुए देख पड़ें। किस चञ्चलशील कालके महान्तरसे ये सब असम्भव होनेवाले कार्य होते रहते हैं इसीकी प्रकार महिमासे प्रमारकुलका सामान्य चिन्ह भी नहीं मिलता है। जो प्रमारकुल महाराज चन्द्रगुप्त जैसे संसारविदित नृपतियोंकी प्रदीप्त कीर्त्तिसे उज्ज्वलित हुआ था—एक समय तैमूरी तख्तसे उतारे जाकर शाह हुमायूँको जिसके एक सामान्य वंशधरके यहां आश्रय लेकर अपने प्राणोंकी रक्षा करनी पड़ी थी—आज राजपूतानेके धाट नगरका * वर्त्तमान नृपति ही उसके उस प्राचीन गौरव और प्रतापका अन्तिम चिन्हस्वरूप रह गया है।

प्रमार कुल पैंतीस शाखाओंमें विभक्त है। उन पैंतीस शाखाओंमें विहिल शाखा अधिक प्रसिद्ध है। इस शाखामें जो नरपति उत्पन्न हुए थे उन्होंने बहुत दिनोंतक अरावलीके नीचे प्राचीन चन्द्रावती नगरीमें राज्य किया था।

चाहुमान वा चौहान।—चौहान कुलके गौरव और प्रतिष्ठाके विषयमें पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है, अतएव इस स्थानमें उसका विस्तारके साथ विवरण लिखनेकी विशेष आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हां, चौहानोंके सम्बन्धकी जिन बातोंका अभीतक उल्लेख नहीं किया गया है उनको हम यहां लिखे देते हैं।

पवित्र अग्निकुलसे जो कई शाखाएँ निकली थीं उनमें चौहान शाखा विशेष बलवती थी। कहते हैं कि एक समय चौहान इतने बलवान् हो गये थे कि उनके प्रचण्ड वीरत्वके आगे भारतवर्षके दूसरे राजपूतोंका गौरव दब गया था। यद्यपि राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें अनेकोंने बहुत बल विक्रम और प्रतिष्ठा पाई थी और "खाग तलवारं राठौराव" भारतमें प्रसिद्ध है, तोभी विशेष विचार करनेसे स्पष्ट प्रकट होगा कि वीर चौहान राजपूतोंमें सबसे उच्च स्थान पानेके योग्य हैं।

उक्त प्रसिद्ध राजकुलसे जो कई शाखाकुल निकले उन्होंने अपने मूल वंशधरके उच्च गौरवकी रक्षा करके चौहान नाम सार्थक कर दिखाया। उन शाखाओंमें

* इस राजाने प्रमारकुलकी प्रथम शाखाके सोढा गोत्रमें जन्म ग्रहण किया था। सिकन्दरके समयके इतिहासलेखकोंने इस सोढाको समदी नामसे लिखा है। सोढा गोत्रमें अमर और समर नामक दो प्रतिष्ठित राजा उत्पन्न हुए थे, उन दोनोंके नामोंपर अमरकोट और समरकोट नामक दो नगरोंका नामकरण हुआ है।

हार, खिची, देवरा और शनिगुरु आदि विशेष प्रसिद्ध हैं। उनके वीरत्व माहात्म्य और गौरवकी बातें आज भी भट्टकवियोंके सुन्दर काव्यग्रन्थोंमें उज्ज्वल अक्षरोंमें विराजमान हैं; आज भी उनके वंशधर उन कविताओंको पढ़ वा सुनकर अपनी वर्त्तमान अवस्था भूल जाते हैं और थोड़ी देरके लिये उनके पूर्वपुरुषोंकी वीरता उनके रक्तमें प्रविष्ट कर उसको हिलोड़ने लगती है।

चौहानकुलके प्रतिष्ठाता वीरवर चौहानका जीवनवृत्तान्त बहुतही मनोहर है। यद्यपि वह कल्पनाके घने जालमें उलझा हुआ था तौभी उसके पढ़नेसे हृदयमें एक नया भाव उत्पन्न होता है। आगे केवल चौहानही नहीं वरन् शेष तीनों कुलोंकी भी उत्पत्तिका हाल लिखा जाता है.—

पहलेही कहा जा चुका है कि प्रसिद्ध सुमेरु और कैलासकी भांति आबुँध (अथवा आबू) भी बहुत पवित्र पर्वत है। अग्निकुलोत्पन्न वीरगण इस पर्वतको महादेवका स्थान बतलाते हैं। कहते हैं कि उक्त पर्वत कन्दमूलफलाहारी ईश्वर-भक्त उपासकोंकी योगभूमि है। योगशील ब्राह्मण दैत्योंके आक्रमणसे अपने पवित्र सनातनधर्मकी रक्षा करनेके निमित्त उस ऊँचे गिरिराजकी चोटी पर वास करते थे, परन्तु क्रूराचारी दानवदल वहां भी पहुँचकर तरह तरहके अत्याचारोंके द्वारा उनके योगके नष्ट करनेकी चेष्टा करता था।

सनातनधर्मानुरागी पवित्रहृदय विप्रगण एक समय नैऋत्यकोणमें अपना होमकुण्ड बनाकर देवताओंको आहुति दे रहे थे, इतनेमें दलके दल असुरोंने आकर ऐसी प्रचण्ड आंधी उठाई कि उनके चारो ओर ऊपर नीचे सर्वत्र धूलिही धूलि छा गई। दुराचारी दैत्योंने उस समय रक्त मांस हड्डी आदि अनेक अपवित्र पदार्थ उनपर फेंकने आरम्भ किये। उन दुष्टोंके इस प्रकार पीड़ा पहुँचानेसे ब्राह्मणोंका योग भङ्ग हो गया—वे अभीष्ट वर नहीं पा सके।

परन्तु सनातनधर्मविद्वेषी दैत्योंका अत्याचार दृढ़प्रतिज्ञ द्विजोंके उद्योगको नहीं रोक सका। वे फिर अग्निकुण्ड प्रज्वलित करके उसके चारों ओर बैठे और मन्त्रोच्चारणके द्वारा देवदेव महादेवके प्रसादकी प्रार्थना करने लगे।

उस समय उस पवित्र अग्निकुण्डसे * एक मूर्त्ति निकली, पर उसके शरीर

* जिस जगह यह अग्निकुण्ड बना था टाड साहब वहां स्वयं गये थे। वे लिखते हैं कि वहां एक वेदीके ऊपर आदिनाथकी पत्थरकी एक मूर्त्ति स्थापित है।

में किसी प्रकारका वीर लक्षण नहीं दिखाई दिया। तब ब्राह्मणोंने उसे दरवान की भांति द्वार पर खड़ा कर दिया। फिर दूसरी मूर्त्ति निकली; परन्तु उसकी आकृति चुलुककी भांति थी अतएव ब्राह्मणोंने उसका नाम चौलुक्य रखा। क्रमशः तीसरी मूर्त्ति दिखाई दी, जिसे उन्होंने प्रमार नामसे सम्बोधन किया। इस मूर्त्तिमें वीरताके चिन्ह पाये जाते थे, अतएव इसे युद्धकुशल जान ऋषियोंने दैत्योंके विरुद्ध लड़नेके हेतु समरक्षेत्रमें भेजा। इसने दूसरे वीरोंके साथ दैत्योंसे युद्ध अवश्य किया, परन्तु युद्धमें इसकी जीत नहीं हुई।

पश्चात् वशिष्ठदेव पुनः पद्मासनसे बैठे और मन्त्रपाठके द्वारा देवताओंको बुलाने लगे। फिर ज्योंही उन्होंने आहुति दी त्योंही उस अग्निकुण्डसे एक वीर-मूर्त्ति निकल आई। उसका डीलडौल बड़ा, ललाट उन्नत एवं चौड़ा, बाल भौंरेकी भांति काले, नेत्र बड़े बड़े मतवाले और छाती चौड़ी थी। मूर्त्ति उसकी बड़ी भयानक थी, सारा अङ्ग वर्मसे ढँका हुआ था, पीठ पर वाणोंसे भरा एक बड़ा तूणीर था, एक हाथमें प्रचण्ड तलवार थी और दूसरेमें ढाल। जिन्होंने बहुत बलशाली देखकर उसका चौहान नाम रखा।

वह प्रबल पराक्रमी चौहान वीर तुरन्तही असुरोंसे युद्ध करनेको भेजा गया। उसे विदा करनेके समय वशिष्ठजी भगवती आशापूर्णाकी प्रार्थना करने लगे। पलक मारतेमें त्रिशूलधारिणी शक्तिदेवी सिंहकी पीठ पर चढ़ी हुई द्विजोंके सम्मुख आईं और उस चौहान वीरको आशीर्वाद देकर उन्होंने दैत्योंके विरुद्ध प्रेरित किया। आशापूर्णा भगवती कालिका देवी इस प्रकार अपने भक्तोंको उत्साहित कर फिर अन्तर्धान हो गईं। ब्राह्मणोंने उस चौहान वीरको अनहिल नामसे पुकारा और आनन्दपूर्वक विजयगीत गाया। इसके उपरान्त बड़े उत्साहसे उत्साहित होकर वीरवर अनहिल अपने सैनिक साथियोंको लेकर असुरोंसे युद्ध करने चला। आखिर दोनों दलोंमें भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ; दुष्ट दैत्य अनहिलके आगे नहीं ठहर सके; खूबही पराजित हुए। बहुतेरे मारे गये, शेष प्राण लेकर गरकमें जा छिपे। इस प्रकार दुराचारी दानवदलके पराजित होनेसे द्विज लोग निरुपद्रव हुए। इसी चौहान वीरके पवित्र कुलमें वीरवर महाराज पृथ्वीराजने जन्म ग्रहण किया।

चौहानकुलकी तालिका देखनेसे विदित होता है कि वीरवर अनहिलके

लेकर पृथ्वीराज तक इस कुलमें सब मिलाकर उनतालीस राजा हुए। परन्तु वह तालिका शुद्ध है या नहीं इस बातका विचार करनेका कोई उपाय नहीं है। भट्ट-ग्रन्थोंमें लिखा है कि महाराज पृथ्वीराजसे पहले अग्निकुण्ड बनाया गया था। इस और इतिहास देखनेसे विदित होता है कि महाराजकी उत्पत्ति विक्रमादित्यके १२१५ वर्ष बाद हुई थी। तो क्या इतनी शताब्दियोंमें केवल १८ राजाओंका होना युक्तिसिद्ध माना जा सकता है?

चौहानकुलमें अजयपाल नामक एक प्रतिष्ठावान् राजा हुआ था। यही अजय-पाल प्रसिद्ध अजयमेरु (अजमेर) दुर्गका प्रतिष्ठाता है। जिन नगरोंमें प्राचीन चौ-हानोंने प्रतिष्ठा पाई थी अजमेर उनमें प्रथम है।

बहुतोंका अनुमान है कि अजमेरकी प्रतिष्ठासे पहले प्रसिद्ध शम्भर (सांभर) झीलके † तटपर चौहानोंने शम्भर नामक एक और नगर स्थापित किया था। इस शम्भर नामके अनुसार वहांके राजे शम्भरीराव कहे जाते थे। चौहानोंका गौरव और प्रताप बहुत कालतक इन नगरोंमें बना रहा। अन्तमें जिस दिन हिन्दूराजचक्रवर्त्ती महाराज पृथ्वीराज अपने नानाके सिंहासन पर आरूढ़ हुए उस दिन चौहानकुल एकबारही अत्यन्त प्रकाशमान हो गया, परन्तु वह प्रकाश बुझते हुए प्रदीपकी अपस्थायिनी दीप्तिकी भांति था, अतएव उनके साथ साथ चौहानकुलका गौरव और ये सब नगर भी क्रमशः क्षीण होने लगे।

पवित्र अग्निकुलने एकमात्र चौहान वीरोंकी वीरता और गौरवके कारण अमरत्व पाया है। जिन धुरन्धर राजाओंने इस वीरकुलमें जन्म पाया था उनमें महाराज माणिकराय प्रथम हैं। मुसलमानोंके जिस प्रचण्ड आक्रमणके कारण पञ्जाब देश कम्पायमान हुआ था उस आक्रमणको सबसे प्रथम महावीर माणिक-रायने रोक दी थी।

पृथ्वीराज और माणिकरायको छोड़ और भी अनेक पराक्रमी चौहान नृपतियों का विवरण पाया जाता है। भिन्न भिन्न जातियोंका इतिहास पढ़नेसे इस बात

† राजपूतोंकी प्रधान आराध्यदेवी भगवती शाकम्भरी माताकी एक पत्थरकी मूर्त्ति इस झीलके मध्य भागमें स्थापित है। इसी शाकम्भरी नामसे झीलका शम्भर (वर्त्तमान सांभर) नाम पड़ा।

की सबलताका पूरा पता मिल जाता है कि एक समय ये लोग बड़े बलवान् थे, यहांतक कि मुसलमान ऐतिहासिकोंने भी मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है कि जिस समय महमूद गजनवी सैन्यदलके साथ सोमाइकी ओर बढ़ रहा था उस समय अजमेर नगरमें एक प्रतापी राजाने * उसे खूबही पराजित और अपमानित किया था। उस चौहान वीरकी वीरताके आगे विजयकी आशा त्यागकर महमूदको युद्धक्षेत्रसे भाग जाना पड़ा था।

प्रथम हिजरीके अन्तिम भागमें खलीफा वलीदके प्रसिद्ध सिपहसालार कासिम ने महाराज माणिकराय पर आक्रमण किया। इतिहासोंमें यह बात वर्णित है कि इस भीषण युद्धमें मुसलमानोंका बल बहुत टूट गया था। इसके बाद वे ऊपर-ही ऊपर कई बार भारतभूमिमें आकर ढेरके ढेर रत्नादिक यहांसे लूट ले गये। जिस समय महाराज विशालदेव अजमेरके सिंहासन पर आरूढ़ थे उस समय भी मुसलमानोंने एकबार भारत पर आक्रमण किया था। इस देश पर मुसलमानोंकी यह तीसरी चढ़ाई थी। चौहान वीर महाराज विशालदेवने सेना सुसज्जित करके इन देश तथा धर्मके द्रोहियोंका सामना किया। दोनों दलोंमें घोर संग्राम हुआ। इस भीषण संग्राममें मुसलमान पराजित होकर भाग गये। इस अवसर पर अनेक प्रतापी हिन्दू राजाओंने सामन्तोंकी भांति विशालदेवकी सहायता की थी। उन सहायक राजाओंमें प्रमारकुलके वीर उदयादित्यका नाम विशेष प्रसिद्ध है। प्रायः सभी ग्रन्थोंसे विदित होता है कि सन् १०८६ ई० में वीर उदयादित्यकी मृत्यु हुई थी। इससे इस बात का निश्चय होता है कि यह भयङ्कर लड़ाई महमूदकी चौथी पीढ़ीके मुसलमान बादशाह इमदादके साथ हुई। देहलीके प्राचीन विजय-स्तम्भमें एक लेख खुदा हुआ है, उसके पढ़नेसे भली भांति विदित हो जाता है कि इस युद्धमें महाराज विशालदेवकी जीत हुई थी।

यद्यपि चौहानराज विशालदेवके प्रचण्ड विक्रमके आगे इमदाद पराजित हुआ परन्तु इससे मुसलमानोंकी जीतकी विकट इच्छा नहीं रुकी; वे इसके बाद भारत-वर्षमें आकर यहांके निवासियोंके ऊपर नाना प्रकारके अत्याचार करने लगे। उनके इस प्रकार बारम्बार आक्रमण करनेसे भारतवर्षीय राजाओंके राज्य एक

* इस चौहानवीरका नाम धर्माधिराज था; यह विशालदेवका पिता था।

हुए अशान्तिपूर्ण हो गये । उनका गौरव और विक्रम क्रमशः घट चला । अन्तमें अन्तिम चौहानवीर पृथ्वीराजके कैद होने और मारे जानेके साथही चौहानोंका वह विक्रम और गौरव एकबारही अस्त हो गया ।

चौहानकुलकी सब मिलाकर चौबीस शाखायें हैं । उन चौबीसों शाखाओंमें हाराबतीके बूंदी और कोटा राजवंश विशेष प्रसिद्ध हैं । ये चौहान अपने पूर्वपुरुषों के प्राचीन गौरवकी रक्षा करनेमें पूर्ण रीतिसे समर्थ हुए हैं । इन दोनों राजकुलों से उत्पन्न वीरोंमेंसे छःने पितृद्रोही निष्ठुर औरङ्गजेबके हाथोंसे शाहजहांकी रक्षा करनेके लिये बड़े वीरभावसे अपने हृदयका रक्त बहाया था * ।

चौहानकुलके बहुतेरे सामन्त राजाओंने अपने राज्यकी रक्षाके हेतु अपने पूर्वपुरुषोंके पवित्र सनातनधर्मको छोड़ा × । कहते हैं कि पृथ्वीराजके भतीजे ईश्वरदासने सबसे प्रथम मुसलमान होकर यह दूषित उदाहरण उत्पन्न किया ।

चौलुक्य वा सोलङ्की † ।—पहलेहो कहा जा चुका है कि सोलङ्कीकुल प्रमार और चौहानकुलके समयमें उत्पन्न हुआ था, परन्तु इतिहास सम्बन्धी उपयोगी वृत्तान्त न मिलनेसे उसका प्राचीन विवरण विदित नहीं होता ।

भट्टोंके काव्यग्रन्थोंमें लिखा है कि राठौरोंके द्वारा कन्नौज अधिकृत होनेसे पहले सोलङ्कीकुल विशेष प्रतिष्ठावान् था । आगे कहा जा चुका है कि भट्टी लोग जिस समय राजपूतानेमें आकर रहने लगे थे उस समय लङ्गहों और तुगरोंने ‡ उनके साथ घोर शत्रुताका व्यवहार किया था । कहते हैं कि ये लङ्गह और तुगर

---

* इनके सिवा गागरोन और रघुगढ़के खीचियों, सिरोहीके देवरों, भाला-वाड़के शनिगुरुओं, सुधार और सांचोरके चौहानों और पावागढ़के पवैचोंका नाम भी मिटने योग्य नहीं है । इनमेंसे कईके वंशोंका पता अब भी लगता है ।

× चौहानकुलके जिन सम्प्रदायोंने इस्लामी धर्म ग्रहण किया था उनमें काय-खानी, सखानी, लवानी, कुररवानी और बेदवानी अधिक प्रसिद्ध हैं ।

† सोलङ्कीका गोत्रविवरण इस प्रकार है—माध्यन्दिनी शाखा; भरद्वाज गोत्र, गढ़ लोहकोट निवास ।

‡ ये मालखांसे उत्पन्न हुए थे इसलिये मालखानी कहलाते थे । इस मालखांने ही सबसे पहले इस्लाम धर्म ग्रहण किया था ।

सोलङ्कीकुलमें जन्म ग्रहण कर पीछे मुसलमानोंका धर्म मानने लगे थे और पहले बम्बईके निकट कल्याण नगरमें रहते थे। कल्याणमें इनके पूर्वपुरुषोंके गौरवके अनेक चिन्ह मिलते हैं। कुछ दिन बाद सोलङ्कीकुलकी एक शाखा इस नगरसे निकलकर अणहिलवाड़ा पाटणमें आकर रहने लगी थी।

प्राचीन चौरकुलमें भोजराज नामक एक राजा हुआ था। उसके पश्चात् इस-कुलका और कोई राजा अणहिलवाड़ा पाटणके सिंहासन पर नहीं बैठा, क्योंकि संवत् ६८७ (सन् ८३१) में उसकी मृत्यु होने पर उसके दौहित्र सोलङ्की मूलराज ने उसके सिंहासनका अधिकार प्राप्त किया। मूलराज * अपने नानाके सिंहासनका प्राय: ५८ वर्ष तक अधिकारी रहा। उसके मरने पर उसका पुत्र चन्द्रराव उत्तराधिकारी हुआ। इसीके राजत्वकालमें महमूद गजनवीने अणहिलवाड़ा पाटण पर आक्रमण करके उस नगरका सत्यानाश किया था। इस भयङ्कर युद्धमें महमूद कितना धन लूटकर ले गया सो सहसा सुननेमें एकदम असम्भव जान पड़ता है, परन्तु जब इस बातका विचार किया जाय कि उस समय पाटणके वाणिज्यकी कैसी उन्नत अवस्था थी तब स्पष्ट प्रकट हो जायगा कि महमूदकी लूटका विवरण अमूलक नहीं वरन् विश्वासके योग्य है। अणहिलवाड़ा (पाटण) उस समय समग्र भारतवर्षमें एक प्रधान वाणिज्यस्थल माना जाता था। महमूद और उसके उत्तराधिकारी बारम्बार आक्रमण करके इस नगरका सब सार ले जाते थे, तिसपर भी यह अपना पूर्वबल पुन: एकत्रित कर लेता था। जिस राजाके राजत्व-कालमें इस नगरकी विशेष प्रतिष्ठा और ख्याति थी उसका नाम सिद्धराय जय-सिंह † था। एक समय कर्णाट और हिमालयके बीचके बाईस नगर सिद्धिरायके राजछत्रके नीचे थे, परन्तु उसके वंशधर इस बड़े राज्यका बहुत दिनोंतक उपभोग नहीं कर सके। कहा जाता है कि महाराज सिद्धिरायके उत्तराधिकारीके किसी

* इसके पिताका नाम जयसिंह था। जयसिंहका विवाह भोजराजकी कन्या से हुआ था।

† सिद्धिराय जयसिंहने संवत् ११५० से १२०१ तक राज्य किया। प्रसिद्ध न्यूबियन भूगोलवेत्ता एल एद्रिसी एकबार इनकी राजसभामें गया था। उसने भी इसे बौद्धधर्मावलम्बी लिखा है।

कार्य्यसे चौहान महाराज पृथ्वीराज रुष्ट हुए और तब उन्होंने उसका राज्य उससे छीन लिया है।

सिद्धिरायके उत्तराधिकारीके राज्यच्युत किये जाने पर कुमारपाल नामक एक चौहान राजा उसके सिंहासनका अधिकारी हुआ। उसके अणहिलवाड़ा पाटणके राजासन पर बैठनेसे मानो उत्तराधिकार-विधिमें एकदम उलटफेर होगया; क्योंकि कुमारपाल चौहान था और सोलङ्कियोंके आसन पर वह बैठा। महाराज सिद्धिराय और यह, दोनों बौद्धधर्म्मके बड़े पक्षपाती और उन्नतिकारक थे। दोनोंके राज्य-कालमें इस धर्म्मका विशेष उत्कर्ष हुआ था। इन्होंने अपने अपने समयमें जो विजयस्तम्भ बनवाये उनकी बनावट तथा कारीगरी देखनेसे बड़ा विस्मय और आनन्द होता है। और तो क्या, किसी हिन्दू राजाके राजत्वकालमें शिल्पका ऐसा अच्छा नमूना नहीं दिखाई दिया।

राज्यके अन्तिम समयमें शहाबुद्दीन (गोरी) के प्रतिनिधियोंने बड़ा अत्याचार किया जिससे कुमारपालको बहुत कष्ट पहुँचा। मुसलमानोंके उपद्रवके कारण उसके राज्यमें उस समय घोर अशान्ति फैल गई। इस अशान्ति और उपद्रवके रोकनेमें असमर्थ होकर अन्तमें बड़े दुःखके साथ उसने इस संसारसे मुँह मोड़ा। उसकी मृत्युके पश्चात् मूलदेव उसके सिंहासनका अधिकारी हुआ। मूलदेवके पर-लोकवासके साथ साथ संवत् १२८४ (सन् १२२८) में अणहिलपुर पाटणसे इस कुलका राजत्व समाप्त हो गया।

अणहिलपुरका सिंहासन सोलङ्कीकुलके हाथसे निकल गया इसमें सन्देह नहीं, परन्तु वह एकबारही खाली नहीं हो गया, विशालदेव नामक एक दूसरे वीरने शीघ्र उसपर अधिकार करलिया। इसने राजासन पर बैठनेके साथही राज्यके सौन्दर्य और शोभाके बढ़ानेकी भी चेष्टा आरम्भ की। इससे पहले धर्म्मविद्वेषी मुसल-मानोंके आक्रमणसे जो स्थान तोड़ फोड़ दिये गये थे उनमें सोमनाथका मन्दिर प्रधान था। यह मन्दिर तथा दूसरी प्रसिद्ध इमारतें और स्थान, विशालदेवके सुगुणोंके कारण फिरसे बनाये और नवीन अलङ्कारोंसे अलङ्कृत किये गये। इस प्रकार बालकरायोंकी पूर्वभूमि अणहिलवाड़ा पाटणने धीरे धीरे अपना प्राचीन गौरव पुनः प्राप्त किया। इतनेमें अलाउद्दीनने दलबलके सहित उस प्रदेशपर चढ़ाई की।

उसका प्रचण्ड आक्रमण सहन करनेमें असमर्थ होकर तत्कालीन राजा शिवराजकर्ण लड़ाईमें मारा गया। साथही अणहिलवाड़ा पाटण भी विध्वस्त हो गया।

उस हिन्दूविद्वेषी तातारीके निठुर प्रतिनिधियोंकी दुष्टताके कारण गुजरात और सौराष्ट्रके समृद्ध नगर और भरेपुरे शोभायमान स्थान एकबारही श्मशानके समान हो गये। जिधर देखिये उधरही प्रकृतिकी शोचनीय मूर्त्ति वर्त्तमान थी—जिस ओर दृष्टि डालिये उसी ओर बड़ी बड़ी टूटी फूटी अट्टालिकाएँ उदास भावसे पड़ी थीं! अधिक क्या कहें, इतनाही कहना बहुत होगा कि उस जगह मानों मुसलमानोंका अत्याचार स्वयं मूर्त्तिमान् खड़ा था! दुष्टोंने उत्तेजित होकर आदि-नाथका मन्दिर एकदम तोड़फोड़ डाला और उसकी जगह किसी मुसलमान फकीरका मकबरा बनाया था। इस प्रकार जो कुछ पवित्र और सुन्दर था सब दुर्दान्त मुसलमानोंके द्वारा एकदम नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया था।

सनातनधर्मसे पूर्ण विद्वेष रखनेवाले मुसलमानोंके आक्रमणसे जिस दिन वि-शाल सौराष्ट्र देशकी ऐसी दुर्दशा हुई उस दिन सोलङ्कियोंकी राजलक्ष्मी भी विदा हो गई;—सोलङ्कीय वीरोंको अपने बड़े बूढ़ोंके राज्यसे निकलकर भारतमें इधर उधर आश्रय ढूंढ़नेके लिये भटकना पड़ा। तबसे सौ वर्षसे अधिक कालतक सोलङ्की कुलका सिंहासन खाली रहा। इस बीचमें उस सिंहासन पर किसी हिन्दू राजाका अधिकार नहीं रहा।

इस लम्बी अराजकताके बाद तक्षकवंशी एक वीर पुरुषने सौराष्ट्र प्रदेशके भग्न सिंहासन पर आरोहण किया और बहुत शीघ्र प्रायः पहलेकी भांति उसे सुशो-भित कर दिया। उसका नाम शिहरण था। उसने सौराष्ट्रके गौरवका पुनः उद्धार किया, किन्तु सोलङ्कियोंका जो गौरव एकबारही लोप हो गया था उसका उद्धार वह नहीं कर सका। कारण यह कि उसने अपने पूर्वपुरुषोंका धर्म त्यागकर मुसलमानी धर्म ग्रहण किया और अपना नाम मुजफ्फर रखा।

अत्याचारी मुसलमानोंके भीषण उपद्रवसे नष्ट भ्रष्ट होनेसे पहले सोलङ्की कुलसे सोलह शाखाएँ निकल चुकी थीं। उन सोलहों शाखाओंमें बघेला अधिक प्रसिद्ध है। ये बघेले जिस देशमें रहते थे वह देश आजतक * बघेलखण्डके नाम से वि-ख्यात है। महाराज सिद्धिरायके वंशवाले बहुत कालतक इस राज्यके अधिकारी थे।

* सम्भवतः महाराज 'सिद्धिरायके पुत्र भाग्यराय'के नामपर इस शाखाका नाम भागेला वा बघेला पड़ा।

प्रतीहार वा पुरीहार—यद्यपि पुरीहार अग्नि कुलके सब से नीचे आसन पर थे तौभी उनके सम्बन्धमें अनेक गौरवसूचक विवरण पाये जाते हैं। वे कभी स्वाधीन राज्यके अधिकारी नहीं रह सके। भट्टोंके काव्यग्रन्थोंमें लिखा है कि पुरीहार राजे सदैव देहलीके तुआर वा अजमेरके चौहान राजाओंके अधीन सामन्तकी भांति राज्य करते थे। इस अधीनताके समयमें भी स्वाधीनता पानेके लिये उन्होंने जो जो उद्योग किये उन्हींसे उनका जीवनचरित अक्षय अक्षरोंमें वर्त्तमान है। एकही वीरकी आश्चर्यमयी वीरताके कारण पुरीहार कुलने बड़ी प्रसिद्धि पाई है। उस राजपूत वीरका नाम नाहुरराव था, वीरवर नाहुरराव पृथ्वीराजके अधीन सामन्त राजाकी भांति राज्य करता था। अधीनताकी बेड़ियोंसे जकड़े रहने पर भी उसने स्वाधीनता पानेके निमित्त जो कठोर परिश्रम उठाया उसीसे उसके नामने राजपूतोंकी पवित्र तालिकामें स्थान पाया। यद्यपि उसका उद्यम और परिश्रम फलवान् नहीं हुआ, तथापि उससे उसकी वीरता और दृढ़ताका स्पष्ट परिचय मिलता है।

पुरीहारोंकी प्राचीन राजधानीका नाम मण्डवार है। संस्कृतमें इस मण्डवारको मन्दाद्रि कहते हैं। वीर राठौरोंसे पहले मारवाड़ प्रदेशमें पुरीहारोंने प्रतिष्ठा पाई थी। यह स्थान वर्तमान जोधपुरसे तीन कोस उत्तरकी ओर है। यद्यपि मन्दाद्रि बहुत विध्वस्त हो गया है तौभी इसके प्राचीन स्तम्भों और अट्टालिकाओंके देखनेसे पूर्व गौरवका बहुत कुछ पता लगता है।

कान्यकुब्ज छोड़कर राठौरोंने पुरीहारोंके मण्डवार नगरमें आश्रय लिया; परन्तु कृतज्ञताके पवित्र मस्तकपर लात मारकर उन्होंने अपने आश्रयदाताओंकेही साथ घोर अविश्वासका काम किया; उन्हींका नाश करना विचारा। जिस राठौरने ऐसा बुरा आचरण किया था उसका नाम चण्ड था। चण्डने अपनी कुकीर्त्तिके चिह्नस्वरूप मण्डवारके दुर्गपर राठौर-नामाङ्कित झण्डा खड़ा किया। इस घटनासे पहले मेवाड़के बली राजाओंके द्वारा पुरीहारोंका गौरव बहुत कुछ नष्ट किया जा चुका था। पुरीहार राजे पहले राणा कहे जाते थे; परन्तु गिह्लोट-नरेश राहुपने मन्दाद्रिपर आक्रमण करके उनको पराजित किया और उसी समय अपनी जीतके चिह्नस्वरूप उनसे 'राणा' उपाधि भी उसने ले ली *।

* जिस पुरीहार राजाको पराजित करके राहुपने "राणा" उपाधि प्राप्त की थी उसका नाम मुकुल था।

पुरीहार कुल आज दिन राजस्थानमें चारों ओर फैला हुआ है; परन्तु दुःखका विषय है कि इस कुलका कोई भी राजा स्वाधीन और स्वतन्त्र नहीं देख पड़ता। कोहारी सिन्ध और चम्बल नदके सङ्गमपर पुरीहारोंका एक प्राचीन स्थान अबतक वर्त्तमान है। इस राज्यमें चौबीस गांव और बहुतसे छोटे छोटे झोपड़े मात्र हैं। पुरीहारोंका यह प्राचीन स्थान पहले सिन्धियाके अधिकारमें था; परन्तु ब्रिटिश-सिंहने आवश्यकता समझकर इसे अपने विशाल राज्यमें मिला लिया है।

यह कुल बारह शाखाओंमें विभक्त है। उन बारहों शाखाओंमें इन्दो और सिन्धिल विशेष प्रसिद्ध हैं। लूनी ¶ नदीके किनारे इन दोनों शाखा कुलोंके कुछ चिन्ह अब भी देख पड़ते हैं।

सौर।—किसी समय इस जातिके लोगोंने बहुत अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की थी और उस समय इनके गौरवसे समस्त भारत गौरवान्वित था; भारतवासी इनकी कीर्त्ति और गौरवके गीत बड़े प्रेमसे गाते थे। परन्तु दुर्भाग्यसे आज इस देशमें उनकी उस कीर्त्ति गौरव और प्रतिष्ठाका कोई प्रकाशमान चिन्ह नहीं मिलता। यदि भट्टोंके ग्रन्थोंमें सौर कुलका वर्णन न होता तो कदाचित् भारतवर्षके इतिहाससे उनका भेदनीय नाम अबतक कभी लोप हो गया होता। सौरकुलकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें हम कुछ नहीं जानते, क्योंकि चन्द्र और सूर्य्य किसी कुलमें इनका नाम नहीं है।

यदि भारतवर्षको इनकी आदिनिवासभूमि माना जाय तो अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि बहुत प्राचीन कालमें इनके वंशका बीज भारतक्षेत्रमें बोया गया था। क्योंकि भट्टग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि मेवाड़के राजे जिस समय वल्लभीपुरके सिंहासनके अधिकारी थे उस समय इनसे उनका वैवाहिक सम्बन्ध होता था।

यह बात तो इनके नामहीसे प्रकट है कि सौरकुलके लोग सूर्य्यके उपासक थे। इनके इसी नामपर सौराष्ट्रका * नामकरण हुआ है। इन्होंने बहुतसे नगर स्थापित किये थे; उनमें देवबन्दर अधिक प्रसिद्ध है। सौराष्ट्रकी सीमा पर एक

¶ मारवाड़ राज्यके दक्षिण-पश्चिमसे होकर यह नदी बहती है।

* सोरठ, सौरराष्ट्र शब्दका अपभ्रंश है।

छोटा टापू था, वह भी देवबन्दर कहा जाता था। सौरकुलवालोंने सोमनाथके प्रसिद्ध मन्दिरके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे कई देवालय स्थापित किये थे।

कहते हैं कि "देवबन्दरके अधिपति डाकुओंकी भांति दूसरे देशके व्यापारियोंके जहाजोंसे धनादि लूट लेते थे; इसीसे समुद्रने बहुत क्रुद्ध होकर उनका नगर ग्रास कर लिया।" देवबन्दर बहुत नीची भूमिपर बसा था अतएव ऊपर लिखी किम्वदन्ती एकादम झूठी नहीं कही जा सकती; परन्तु भारतवर्षकी उस समयकी वाणिज्य सम्बन्धिनी अवस्थाका विचार करनेसे एक और सत्यका पता लगता है। वह यह कि उस समय भारतका अरब देशसे व्यापार-सम्बन्ध था। अरबी सौदागर जहाज और धन लेकर सौराष्ट्रमें आते थे; क्योंकि यही राज्य उस समय यहांका प्रधान वाणिज्यस्थल था। कदाचित् देवबन्दरके अधिकारीने उनपर अत्याचार किया था जिससे उन्होंने दलके दल आकर उस प्रदेशको विध्वस्त कर डाला। आगे चलकर मेवाड़के वृत्तान्तके साथ एक प्रकार यह बात प्रमाणित हो जायगी कि ऐसीही किसी दुर्घटनाके कारण देवबन्दर विध्वस्त हुआ था। उस राज्यके ऐतिहासिक-ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि जब सौरकुलवाले देवबन्दरसे हटाये गये तब मेवाड़के राजाओंके यहां उन्होंने आश्रय पाया।

पश्चात् संवत् ८०२ (सन् ७४६) में सौरकुलके राजा वाणने अणहिलवाड़ा पाटण स्थापित किया। इससे पहले वल्लभी सौराष्ट्र प्रदेशकी राजधानी थी; परन्तु अणहिलवाड़ा पाटणके स्थापित होने पर उसका गौरव घट गया। उस समय महाराज वाणकी नई राजधानीने उसका स्थान पाया।

महाराज वाणके वंशधर १८४ वर्ष तक अणहिलवाड़ाके अधिकारी रहे। वहां क्रम क्रमसे उनकी आठ पीढ़ियोंका राज्य रहा। अन्तमें अन्तिम राजा भोज अपने अत्मजके द्वारा पदच्युत हुआ जिससे सौरकुलका राज्य एकबारही समाप्त होगया *।

* इससे पहिले सोलङ्की कुलके वृत्तान्तके साथ लिखा जा चुका है कि सन् ९३१ ई० में भोजराजकी मृत्यु होने पर उसका दौहित्र मूलराज उसके सिंहासन पर बैठा; परन्तु इस जगह उसके विपरीत बात दिखाई देती है। यह बात हमारी समझमें नहीं आती कि टाड साहबने ऐसी गड़बड़ क्यों की। इधर एलफिन्ष्टन् साहबने 'भारतवर्षके इतिहास' में लिखा है कि "सौरकुलका अन्तिम राजा ९३१

तक्षक—बहुत प्राचीन कालमें जिन वीरोंने शाकद्वीपसे आकर भारत पर चढ़ाई की थी उनमें तक्षक प्रधान हैं। इस कुलके विशाल वंशवृक्षसे भिन्न भिन्न शाखाएँ निकलकर चारों ओर फैल गई थीं। जो जितवंश असंख्य गोत्रोंमें विभक्त था, जिसके असंख्य गोत्रोंसे असंख्य वीरोंने उत्पन्न होकर एक समय अपने वीरदर्पसे सारे संसारको काँपा दिया था, वह भी इस तक्षकवंशसे पहले प्रतिष्ठित नहीं हुआ था।

अबुलगाजीने उक्त तक्षकको तुर्कका पुत्र तनक, चीनी इतिहासलेखकोंने तुकग्यू और ह्राबोने तकारी लिखा है। इन तकारियोंने ग्रीकोंके प्रसिद्ध बक्ट्रियार राज्यको विध्वंस्त करके एशियाके एक बड़े देशका नाम अपने नामके अनुसार तकारिस्तान (अथवा तुर्किस्तान) रखा।

आगे कहा जा चुका है कि टेष्ट तक्षक और तकारियोंके इतिहासके सम्बन्धमें बहुतसे शिलालेख राजस्थानके कई स्थानोंमें पाये गये थे। उन शिलालेखोंमें उक्त तक्षकोंके आचारव्यवहारके सम्बन्धमें जो बातें प्रकट की गई हैं वे पौराणिक तक्षकोंके आचारव्यवहार-सम्बन्धी विषयोंसे बहुत मिलती जुलती हैं। भगवान् कृष्ण-द्वैपायन व्यासके लेखसे इस बातका स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि इन तक्षकोंके द्वारा भारतीय आर्य्योंको बड़ी हानि हुई थी और बहुतेरे आर्य्य नृपति इनकी क्रूरताके कारण कुसमयमेंही इस संसारसे विदा हो गये थे। व्यासजीके काव्यग्रन्थमें जो

ई०में मरा। उसके कोई पुत्र नहीं था। उसके बाद उसका दामाद उसके सिंहासन का अधिकारी हुआ।" (Elphinston's History of India P. 211) अब इस बातका पता लगाना कठिन है कि इन मतोंमें कौन मानने योग्य है। ये मत भिन्न प्रकारके हैं इसमें सन्देह नहीं, परन्तु विशेष सावधानीसे पढ़नेसे इनमें एक प्रकारकी एकता दिखाई देती है। इन तीनों मतोंके पढ़नेसे अवश्य विदित होगा कि ८३१ ई०में सौरकुलकी समाप्ति होने पर चौलुक्योंके राजाने जो सौरकुलकी किसी स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था पाटणका अधिकार पाया। अब यही पता नहीं लगता कि उस स्त्रीके स्वामी अथवा पुत्र किसने राज्यका अधिकार प्राप्त किया था। विशेष विवेचना करनेसे यही परिणाम निकलता है कि नानाकी मृत्यु होने पर मूलराजने उसका सिंहासन पाया था; परन्तु उसके नाबालिग होनेके कारण उसका पिता जयसिंह राज्यकार्य सम्हाले हुए था।

ऐतिहासिक रत्न छिपे हुए हैं वे सब यदि उद्धृत किये जायँ तो भारतवर्षमें एक नवीन युग पैदा हो जायगा। यह वृत्तान्त हिन्दू मात्र जानते हैं कि तक्षकके काटने से महाराज परीक्षितकी मृत्यु होनेपर उनके पुत्र जनमेजयने पितृघाती तक्षकोंको उनकी निष्ठुरताका उचित फल चखानेके लिये महासर्पयज्ञ किया था। परन्तु इस रूपकके पर्देमें जो ऐतिहासिक रत्न छिपे हुए हैं उन्हें कितने लोग जानते हैं? इस सत्यका पता लगाना कोई कठिन कार्य्य नहीं है; जरा विचार करनेसेही वह विदित हो जाता है †।

जिस समय महावीर सिकन्दर भारतमें आया था उस समय पारोपमिसन * पर्वतके निकट तक्षकोंकी एक जाति रहती थी। कहते हैं कि जिस तक्षक शीलने पुरुका पक्ष छोड़कर सिकन्दरका साथ दिया था वह इसी तक्षक वंशका एक राजा था। भट्टियोंके इतिहासमें लिखा है कि "जबूलिस्तानसे हटाये जाकर भा-

† ऐसी वर्णना पढ़नेमें असत्य मालूम होती है, परन्तु यदि वह गम्भीरताके साथ पढ़ी जाय तो उसमेंसे ऐतिहासिक सत्यता निकल आती है। यदि काल्पनिक सर्पकी बात छोड़ दी जाय तो अवश्य मानना पड़ेगा कि किसी तक्षकने अन्यायसे छिपकर महाराज परीक्षितकी हत्या की थी और जनमेजयने निष्ठुर हत्याकारीको दण्ड देनेके लिये तक्षकोंपर आक्रमण करके उनको आगमें भस्म करना आरम्भ किया था। नीचे लिखा वृत्तान्त पढ़नेसे विदित होगा कि यह विवरण एकदम आनुमानिक नहीं है। सन् १८११ ई०में टाड साहब चम्बल नदीके किनारे गूजरगढ़ नामक स्थानमें भूमिकी नाप करने गये थे। उस समय वहां एक प्रचण्ड जाति रहती थी। वहां जाकर उन्होंने सुना कि गूजरोंका सूर्य्यमल नामक एक राजा था। उसने एक रात वहांके अधिकांश निवासियोंको सिकड़ोंसे बाँधा और उनको एक एक करके अग्निमें जलाकर मार डाला। इस भीषण हत्याकाण्डको हुए बहुत दिन नहीं बीते हैं। जब इतिहासमें ऐसे भयानक "नरमेध" का विवरण पाया जाता है तब पौराणिक जनमेजयका नागयज्ञ कैसे अमूलक और असत्य कहा जा सकता है?

* हिन्दूकुशके दक्षिण जो पर्वतमाला है उसीका नाम पारोपमिसन है। काबुल नदी इस पर्वतके नीचेसे प्रवाहित होती है।

रतवर्षमें पुन: प्रवेश करनेके समय उन्होंने तक्षकोंकी प्राचीन निवासभूमि छीन ली थी। तक्षकोंका शालिवाहन नामक एक नगर था; भट्टियोंने वह नगर भी उनसे ले लिया। यह घटना युधिष्ठिरके १००८ सम्वत्‌में हुई।" अब यह विदित होता है कि जिस शालिवाहनने हिन्दूराजचक्रवर्त्ती महाराज (तुआर) विक्रमको पराजित किया था उसीने इस शालिवाहन पुरकी प्रतिष्ठा की थी।

बहुतोंका अनुमान है कि ईसामसीहसे छ: या सात शताब्दियां पहले तक्षकोंने शिशुनाग नामक अधिनेताके साथ भारतवर्षमें प्रवेश किया था। यह अनुमान सच माना जा सकता है; क्योंकि दूसरे इतिहासोंके देखनेसे विदित होता है कि ठीक इसी समय उन्होंने मिस्र और सीरिया राज्योंमें प्रवेश कर वहां बड़ी वीरता दिखाई थी और भयानक उथलपुथल मचा दिया था।

प्राचीन तक्षककुलके वृत्तान्तके सम्बन्धमें यहां अधिक बातें लिखनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती; अतएव अब हम इस कुलके वर्त्तमान वंशधरोंके विषयमें लिखते हैं। भट्टोंके काव्यग्रन्थोंमें लिखा है कि गिह्लोटोंका अधिकार होनेसे पहले तक्षक कुलका एक नरपति चित्तौड़के सिंहासन पर आरूढ़ था। फिर वहांके सिंहासन पर गिह्लोटोंका अधिकार होने पर जिस समय मुसलमानोंने आक्रमण किया उस समय अनेक हिन्दू राजाओंने स्वदेश और स्वजाति-प्रेमसे उत्साहित होकर चित्तौड़वालोंकी सहायता की। उन सहायक राजाओंके नामके साथ असीरगढ़नरेश * तक्षकराजका नाम भी पाया जाता है। असीरगढ़में तक्षकोंने बहुत दिनोंतक राज्य किया था। चन्दकविने लिखा है कि इस वंशका एक मनुष्य दिल्लीश्वर पृथ्वीराजकी सेनाका प्रधान अधिनायक बनाया गया था। ‡

पहले कहा जा चुका है कि तक्षककुलके शिहरथ नामक राजाने अपना प्राचीन धर्म त्यागकर मुसलमानोंका धर्म ग्रहण किया था। इस शिहरथके बाद क्रमश: चौदह राजे गुर्ज्जरके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। पश्चात् जिस दिन वहांके अन्तिम

---

* यह स्थान खान्देशमें है और इस समय ब्रिटिश राज्यके अधीन है।

‡ चन्दकविने इस तक्षकवंशी मनुष्यको पृथ्वीराजका झण्डा-बरदार कहा है। इसका नाम चिचू तक्षक था।

नरेश मुजफ्फरने इस संसारसे मुँह मोड़ा उस दिनसे वीर तक्षकवंशके विशाल वृक्षकी जड़ सदा सर्वदाके लिये कट गई।

जिस वीर तक्षकजातिने अपूर्व विक्रम और गौरव पाकर राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें आसन प्राप्त किया था आज उसका कुछ भी चिह्न भारतमें कहीं देख नहीं पड़ता।

*जित।—राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंकी प्राचीन तालिकामें जितोंका नाम भी पाया जाता है; परन्तु कहीं भी इस कुलके लोग "राजपूत" नहीं लिखे गये हैं और किसी भी राजपूतकुलने इनके साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं किया है।

जितोंके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें पहले बहुत कुछ कहा जा चुका है; अतएव यहांपर उन्हीं बातोंका फिरसे उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। महाराज साइरसके राजत्वकालसे लेकर खृष्टीय चौदहवीं शताब्दि तक इनका राजनैतिक और सामाजिक व्यवहार एक समान रहा। परन्तु इसके बाद अपना प्राचीन धर्म त्यागकर इन्होंने मुसलमानोंका धर्म्म ग्रहण किया। हिरोडोटस कहता है कि इससे पहले जितलोग एकेश्वरवादी थे; आत्माके अमर होनेका उनको विश्वास था। और डिगायनने चीनी इतिहासवेत्ताओंकी लिखावटका सार लेकर लिखा है कि बहुत प्राचीन कालमें वे बौद्धधर्म्मावलम्बी थे।

जितोंके सम्बन्धमें जितनी किम्बदन्तियां सुननेमें आती हैं उन सभोंका सार निकालनेसे विदित होता है कि सिन्धुनदके पार पश्चिम दिशाका कोई प्रदेश इनका आदिनिवासस्थान था। टाड साहबने खृष्टीय पांचवीं शताब्दिकी एक शिलालिपिका पता लगाया है। उसमें लिखा है कि इस वंशके किसी राजाने यदुकुलकी एक रमणीके साथ अपना विवाह किया था † कदाचित् इसीसे जित लोग अपनेको यदुवंशी कहते हैं।

---

† कोटाके दक्षिण ओर कुछ दूर पर कुनसूया नामकी एक छोटीसी नगरी है। यहांके किसी मन्दिरमें टाड साहबने सन् १८२० ई० में एक शिलालेख पाया। शालपुरके महाराज शालीन्द्रजितके गुणोंके वर्णनके बाद उस शिलामें एक स्थान पर लिखा था कि "शालीन्द्रके कुलमें देवङ्गलि नामक एक और वीर जन्मा था। उसके पुत्रका नाम शम्बूक था। शम्बूकसे दिगलकी उत्पत्ति हुई। दिगलने यदुवंश

यह पता नहीं लगता कि उक्त पांचवीं शताब्दिसे कितने पहले ये लोग राजस्थानमें आये; परन्तु ध्यानसे उनकी जीवनी पढ़नेसे स्पष्ट विदित होता है कि सन् ४४० ई० में वे नवीन गौरवसे गौरवान्वित हुए थे और उस समय उनकी प्रचण्ड वीरतारूपी आगने समग्र एशिया और योरपखण्डको एकबारगी भस्म कर डाला था †। सिन्धुतीरके शालिवाहनपुरसे * निकलकर यादवोंने शतद्रुपार करके मरुभूमिनिवासी देहिया और जोहिया राजपूतोंके नगरमें आश्रय किया। वहां उन्होंने दिरावलकी स्थापना की। यहां कुछ दिन रहनेके बाद मुसलमानोंके द्वारा उत्पीड़ित होने पर उनको इस्लाम धर्म ग्रहण करने पर बाध्य होना पड़ा। मुसलमान होने पर वे जाट कहे जाने लगे। यदुवंशियोंके प्राचीन

की दो रमणियोंसे विवाह किया। उन दोनों रमणियोंमेंसे एकके गर्भसे वीरनरेन्द्र नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई।" सम्भव है इसी कारण जितगण अपनेको तक्षककुलोत्पन्न बतलाते हों; क्योंकि एक और शिलामें लिखा है कि—"मेरे प्रभुको नमस्कार। उसका गौरव मैं क्योंकर वर्णन करूं? जो विख्यात जित काथिद भगवती पार्वतीके स्तनोंसे निकलनेवाले अमृतको पान करता है, जिसके पूर्वपुरुष वीर तुरच (तक्षक) देवदेव महादेवके गलेमें हारकी भांति विराजमान रहते हैं।" इससे यह बात निश्चित रूपसे समझमें आ जाती है कि जित लोग अपनी उत्पत्ति यदुकुलसे बतलाने पर भी तक्षककुलोत्पन्न हैं।

† सन् ४४८ ई० में हञ्जिष्ट और हर्ष नामक जित भाइयोंने अपने विजयी सैन्यदलको जटलेण्डसे श्वेतद्वीपमें लाकर प्रसिद्ध केण्ट राज्य स्थापित किया। जिस प्रकार इधर इन दोनों भाइयोंने बड़ी वीरताके साथ अपने राज्यकी स्थापना की उसी प्रकार इनके अन्यान्य जाति भाइयोंने भी निज तेजस्विताका परिचय देते हुए संसारके दूसरे स्थलोंमें अपनी विजयपताका उड़ाई।

* पहले इसका नाम शालपुर था। खृष्टीय बारहवीं शताब्दिमें इसके विशेष गौरव प्राप्त करनेका विवरण मिलता है। उस समय यह पञ्जाबका एक प्रधान नगर था। सोलङ्कीकुलके महाराज कुमारपालके राजत्वके सम्बन्धमें एक शिलालेख पाया गया है; उसमें लिखा है कि महाराज कुमारपाल शालपुर तक अपनी विजयिनी सेना ले गये थे।

ग्रन्थोंमें इन जाटोंके सम्बन्धमें प्रायः बीस शाखाओंका विवरण मिलता है। कुछ भी हो, जित जाति पञ्जाब प्रदेशमें बहुत दिनों तक बड़े प्रतापके साथ वर्त्तमान रही। महमूद गजनवीके आक्रमणका हाल पढ़नेसे इस विवरणकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है। कहते हैं कि महमूद जिस समय सौराष्ट्रकी चढ़ाईके बाद अपने देशको लौट रहा था उस समय जितोंने उसे इतना दुःखित और अपमानित किया था कि ४१६ हिजरी (सन् १०२६) में उसने बहुत बड़ी सेना लेकर पुनः पञ्जाब पर आक्रमण किया। फ़ारसी भाषाके "तारीख़ फ़रिश्ता"में इस युद्धके सम्बन्धमें जो बातें लिखी हैं उनका अनुवाद हम नीचे प्रकाशित करते हैं,—

"यौद * पर्वतमालाके नीचे जो नदी बहती है उसके किनारे जो मुलतान है—उसके चारों ओरके प्रदेशोंमें जित लोग वास करते हैं। महमूदने मुलतानमें आकर देखा कि जितोंका निवासस्थान बड़ी बड़ी नद नदियोंसे घिरा हुआ है; अतएव जलयुद्धके सिवा किसी दूसरे प्रकारके युद्धका सुभीता न देख उसने १५०० नावें ‖ तैयार कराईं। महमूद जानता था कि जित लोग जलयुद्धमें बड़े प्रवीण होते हैं अतएव अपनी नावोंकी रक्षाके निमित्त उसने हरेकके आगे लोहेकी छः छः शलाकाएं लगवाईं, एक एक पर २०—२० धनुर्धारी सिपाही नियत किये और गोली बारूदका भी बहुत सामान एकत्रित किया। यह प्रबन्ध करके वह मुलतानमें जाकर युद्धके परिणामकी प्रतीक्षा करने लगा। इधर जितोंने अपने बाल बच्चोंको सिन्धुसागर † भेज तथा चार सहस्र (किसी किसीके मतसे आठ सहस्र)

---

* यदुकुलका ध्वंस होनेपर बचे हुए यादव अपने परिवारवालोंके साथ भारतवर्ष त्यागकर कुछ दिनोंतक सिन्धुनदके दोआबमें आकर रहे थे; इससे उस प्रदेशका एक नाम "यदुका डुङ्ग" भी है।

‖ १३०० वर्ष पहले इसी स्थानके निकट सिकन्दरने वह बड़ी नाव तैयार की थी जो बेबिलोनको गई थी।

† इतिहासवेत्ता "डो" फरिश्ताके आधार पर लिखता है कि सिन्धुसागर एक द्वीप है; परन्तु वास्तवमें वह द्वीप नहीं है। टाड साहबका कथन है कि डो साहबने तारीख फरिश्ताके अनुवादमें बहुत जगह भूलें की हैं।

रखनौकाएं सज्जित करके गजनवियोंका सामना किया। बहुत शीघ्र दोनों सेना-ओंमें भयङ्कर संग्राम आरम्भ हुआ; परन्तु मुसलमानोंकी नावोंके आगे लोहेकी जो शलाकाएं लगी थीं उनसे टक्कर खानेसे जितोंकी बहुतसी नौकाएँ फटकर जलमें डूब गईं। जो फटनेसे बचीं वे गोलोंकी वृष्टिसे छिन्न भिन्न होकर नष्ट होगईं। इस प्रकार बहुत थोड़े लोग इस युद्धसे अपने प्राणोंकी रक्षा कर सके। इन बचे हुए जितोंको अपने उन साथियोंसे भी अधिक कष्ट उठाना पड़ा जो मारे गये थे, अर्थात् ये सब कैद किये गये।"

इस बात पर किसी प्रकार विश्वास नहीं किया जा सकता कि इस युद्धमें जितवंशका समूल नाश हो गया था; अवश्यही कुछ लोग बच गये थे जिन्होंने महमूदके हाथोंसे छुटकारा पानेके लिये दूसरे स्थानमें जाकर आश्रय लिया; परन्तु फिर भी उन्होंने पञ्जाब देश एकदम नहीं छोड़ दिया। स्वदेश त्यागकर जिस पञ्जाब प्रदेशमें वे रहने लगे थे उसे उन्होंने सहस्र सहस्र विपद् पड़नेपर भी नहीं छोड़ा। * महमूदके द्वारा उनके वंशका बहुत कुछ नाश हुआ, परन्तु वेही कई व्यक्ति जो युद्धसे बच गये थे समय पाकर बड़े बलवान् हुए और गौरवकी सब से ऊंची चोटी पर चढ़ गये। †

हून।—शाकद्वीपके जिन वीरोंने राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें आसन पाया था उनमें हून भी हैं। यह पता लगाना कठिन है कि ये लोग ठीक ठीक किस समय भारतवर्षमें आये। जान पड़ता है कि उक्त द्वीपकी काथि बल्ल और मकवाहन आदि जातियां (जो अब भी सौराष्ट्र शाकद्वीपमें रहती हैं) जिस समय आईं उसी समय ये भी भारतवर्षमें आये।

---

* जिन जितवीरोंकी प्रचण्ड वीरताके आगे एक दिन संसार भर कम्पायमान होता था आज समयके हेरफेरसे उन्हींके वंशधर शान्तभावसे खेती करके जीवन व्यतीत करते हैं। इनकी वर्त्तमान दशा देखकर कोई नहीं कह सकता कि ये उसी वीर जित जातिके वंशज हैं। पञ्जाब देशमें अब भी ये लोग जित और जाट कहे जाते हैं। इधर भारतवर्षके अन्य स्थानोंके लोग भी इनको जाट कहते हैं। अब इनमेंसे बहुतेरे मुसलमान हो गये हैं।

† बहुतोंका अनुमान है कि गुरु गोविन्दसिंहने जितोंकोही लेकर सिक्ख-समिति बनाई थी।

एक शिलालिपिसे प्रकट है कि "बिहार प्रान्तके किसी राजाने दिग्विजयके समय अन्यान्य देश जीतकर हूणोंका भी अहङ्कार तोड़ा था।" इस घटनासे पहले इनके विषयमें और कोई विवरण नहीं मिलता ¶। इसके उपरान्त मेवाड़के प्राचीन भट्टग्रन्थोंसे विदित होता है कि जिस समय चित्तौड़ पर पहले पहल मुसलमानोंका आक्रमण हुआ था उस समय उसकी रक्षाके निमित्त जो नरपति समरभूमिमें आये थे उनमें हूणोंका राजा अङ्कुटसी भी था। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डिगायन लिखता है कि 'उङ्कुट' हूणों अथवा मुगलोंकी बड़ी समितिका नाम है, परन्तु अबुलगाजीके मतसे उङ्कुट शब्दका दूसरा अर्थ प्रतीत होता है। वह कहता है कि जो तातारी चीन देशकी प्रसिद्ध बड़ी दीवारकी रक्षा करते थे वेही उङ्कुट कहलाते थे; उनका एक स्वतन्त्र राजा था जो बहुत वेतन पाता था और उसका मान भी बहुत था। प्रसिद्ध डेनविल साहबका कथन है कि हूण भारतवर्षके उत्तरीय भागमें रहते थे। यदि उक्त साहबका लिखना युक्तिसिद्ध माना जाय तो अवश्य कहना पड़ेगा कि हूणोंने भारतवर्षमें क्रमशः प्रवेश कर सौराष्ट्र और मेवाड़में प्रतिष्ठा पाई थी।

बहुत प्राचीन कालमें चम्बल नदीके किनारे बसेली नामकी एक नगरी थी। कहते हैं कि हूण श्रेणीके लोग सबसे पहले वहीं आकर रहने लगे थे। वहां थो-

---

¶ पौराणिक ग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि भारतके आर्यलोग इस घटनाके बहुत पूर्वसे हूणोंको जानते थे। प्राचीन कालमें वशिष्ठ और विश्वामित्रमें जो भयङ्कर युद्ध हुआ था उसमें जिन वीरोंने वशिष्ठजीकी सहायता की थी उनमें हूण वीरोंका भी नाम देख पड़ता है।—

चिबुकांश्च पुलिन्दांश्च चीनान् हूणान् सकेरलान्।
ससर्ज फेनतः सा गौर्म्लेच्छान् बहुविधानपि॥

—महाभारत आदिपर्व्व।

रघुवंशके चौथे सर्गमें लिखा है कि महाराज रघुने दिग्विजयके समय हूणोंको भी पराजित किया था—

'तत्र हूणावरोधानां भर्तृषु व्यक्तविक्रमम्।
कपोलपाटलादेशि बभूव रघुचेष्टितम्॥

इन्ही दिनोंमें इन्होंने बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त की और अपने गौरव तथा कीर्त्तिके स्मारकचिन्हस्वरूप कई महाशिकाएं निर्माण कीं। इस समय जिस जगह पर शिकारपुर है कहा जाता है कि हूनोंने उसी स्थानमें सेनगढ़ चौरी नामक एक विशाल मनोहारी आनन्द-भवन बनवाया था।

गुजरातके इतिहासमें इनके सम्बन्धमें जो विवरण मिलता है उससे विदित होता है कि खृष्टीय बारहवीं शताब्दिमें हूनोंने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। यद्यपि इस समय उनकी वह प्रतिष्ठा वा गौरव नहीं है तौभी विशेष जांच करनेसे उनके पूर्व गौरवके दो चार चिन्ह अबभी सौराष्ट्रके स्थान स्थानमें देख पड़ते हैं। एक समय जिस वीर हून जातिकी समस्त एशिया और योरपखण्डमें धाक बँधी थी, सैकड़ों नगर कसबे और ग्राम जिसकी वीरता रूपी अग्निसे भस्म हो गये थे, आज योरप और एशियाके भिन्न भिन्न स्थानोंमें उसका बहुत थोड़ा चिन्ह दिखाई देता है। काथियोंके संबन्धमें आगे बहुत कुछ कहा जा चुका है; इस स्थान पर उनके आचारव्यवहार और रीतिनीतिसे संबन्ध रखनेवाली बातें संक्षेपमें लिखी जाती हैं। राजस्थान और सौराष्ट्र प्रदेशके सभी भट्टग्रन्थोंमें राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें इनका होना बतलाया गया है। सौराष्ट्र प्रदेशके भट्टकवियोंके काव्य-ग्रन्थोंसे इस बातका निश्चय होता है कि किसी समय उस प्रान्तमें इन्होंने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। इन्हींकी प्रतिष्ठा और गौरवके प्रभावसे सौराष्ट्रका पूर्व नाम बदलकर काथिवार हुआ।

एक समय जिन जातियोंने शाकद्वीपसे आकर सौराष्ट्र प्रदेशका अधिकार प्राप्त किया था उनमेंसे बहुतोंने अपने पूर्वपुरुषोंकी रीतिनीति त्याग दी थी, परन्तु काथि जातिने अभी तक अपना प्राचीन भाव नहीं छोड़ा है। उसकी (आचार व्यवहार, रीतिनीति, धर्मविश्वास, वेशविन्यास इत्यादि) सभी बातें आजतक एक समान चल रही हैं।

जिस समय प्रसिद्ध वीर सिकन्दर हिन्दुस्थानमें आया था उस समय काथि-जाति सिन्धुनदकी पांचों शाखाओंके सङ्गमके निकट रहती थी। कहते हैं कि इस जातिके लोगोंने सिकन्दरको इतना तङ्ग किया था कि उसे इनसे बदला लेनेके लिये स्वयं युद्धयात्रा करनी पड़ी। उस युद्धमें वह बड़ी कठिनाइयोंसे अपनेको

मारे जानेसे बचा सका। उसका बड़ा भाग्य समझना चाहिये कि समस्त पूर्वी और पश्चिमी देशोंमेंसे अधिकांश देश जीतकर सिन्धुनदके किनारे आकर काठियों के द्वारा मारे जाते जाते वह बच गया।

सुदूर पंजाबप्रदेशका दक्षिणपूर्वीय प्रान्त छोड़कर खृष्टीय पांचवीं शताब्दिमें काठि जाति सौराष्ट्रमें आई। जेसलमेरके प्राचीन भट्टग्रन्थोंसे विदित होता है कि यादवोंसे और इस जातिसे बहुत बार युद्ध हुआ था।

जिस कालयुद्धमें राजपूतकुलतिलक महाराज पृथ्वीराज अपने देशकी स्वाधीनतासे वञ्चित हुए थे उसमें जो वीर इनकी तथा इनके प्रतिद्वन्द्वी जयचन्द्रकी सेनामें सम्मिलित थे उनमें काठि जातिके लोग अधिक थे। यद्यपि उस समय वे अनहिलवाड़ा पाटणके महाराजके अधीन सामन्त राजाकी भांति राज्य करते थे तथापि विशेष पता लगानेसे विदित होता है कि वे अपनीही इच्छासे जाकर उक्त दोनों सेनाओंमें सम्मलित हुए थे।

काठि जातिके लोग आजतक सूर्यकी उपासना करते हैं। वे शान्तिसे रहना नहीं चाहते,—लूट मारकर अपनी जीविका चलाते हैं। यद्यपि यह जीविका अनिश्चित रहती है तथापि इसीसे वे सन्तुष्ट रहते हैं। जिस समय घोड़े पर सवार होकर हाथमें त्रिशूल लिये हुए काठि वीर, पथिकोंसे "पथकर" लेने लगते हैं उस समय उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती।

बल्ल।—क्या नवीन क्या प्राचीन सभी भट्टग्रन्थोंमें बल्लोंको राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें बतलाया गया है। भट्टोंने इनको "ठट्ट मुलतानका राव" कहा है; इससे ज्ञात पड़ता है कि वे लोग सिन्धुनदके किनारे रहते थे। बल्लगण अपनेको सूर्यवंशी बतलाते हैं और अपना परिचय दृढ़ करनेके लिये कहते हैं कि रामचन्द्रके पुत्र लवके वंशमें बल्ल अथवा बप्पानामक एक वीर महात्मा उत्पन्न हुआ था वही हमारा गोत्रपति है। सौराष्ट्र प्रदेशमें प्रवेश कर इन्होंने प्राचीन धङ्क नगरीमें रहना आरम्भ किया। बहुत प्राचीन कालमें इस धङ्क नगरका नाम मङ्गीपाटण था। कुछही दिनोंमें बल्लोंने इसके चारों ओरका प्रदेश जीत लिया और इस स्थानका नाम बल्लक्षेत्र रक्खा।

बल्लोंके एक और दलका विवरण पाया जाता है। इस दलके बल्ल चन्द्रवंशसे

अपनी उत्पत्ति प्रमाणित करते और कहते हैं कि सिन्धुनदके तीरपर आरोर ना-मक नगरमें जो वाह्लिक नृपतिगण राज्य करते थे वेही हमारे पूर्वपुरुष थे । यहां पर इसकी मीमांसा करना कठिन है कि बलकुलकी वास्तवमें किस वंशसे उत्पत्ति हुई थी ।

खृष्टीय तेरहवीं शताब्दिसे इस कुलके लोग विशेषतासे दिखाई दिये और इसी कालमें समय समय पर वे मेवाड़में आते रहे । कहते हैं कि इसी कारण गिह्लोटवीर हम्मीरने इनको पराजित करके इनके राजाको मार डाला था ।

झाला मकवाहन ।—झालाकुलके लोग राजपूत कहे जाते हैं; परन्तु चन्द्र, सूर्य और अग्नि इन तीनोंमेंसे किसी कुलमें इनका विवरण नहीं मिलता । जान पड़ता है कि ये लोग भारतकी उत्तर दिशासे सौराष्ट्रमें आये।

केवल एक कार्यके कारण झालाकुलका बड़ा नाम हो गया है । वह कार्य असामान्य है,—वीरता और आत्मत्यागका सच्चा नमूना है । वीरवर प्रतापसिंह पर जिसदिन अकबरके प्रचण्ड सैन्यदलने आक्रमण किया था उसदिन झालावंशी एक वीर पुरुषने अपने जीवनकी आहुति देकर उसके प्राणोंकी रक्षा की थी । इसी अपूर्व आत्मोत्सर्ग और वीराचरणके कारण उस समयसे इस कुलके लोगोंका राजस्थानमें अधिक सम्मान होने लगा है ।

किसी इतिहासमें इस कुलका प्राचीन विवरण नहीं मिलता, यह भी विदित नहीं होता कि ठीक किस समय इस कुलके लोग सौराष्ट्रमें आये । यदि कुछ पता मिलता है तो बस इतनाही कि जिस समय चित्तौड़ पर पहले पहल मुसलमानोंने आक्रमण किया था उस समय अन्यान्य राजपूत वीरोंकी भांति झालाओंने भी चित्तौड़नरेशकी सहायता की थी * ।

जैत्व, जित्व अथवा कोमारि ।—इन्होंने बहुत प्राचीन समयमें सौराष्ट्रमें प्रतिष्ठा प्राप्त की थी । कुलतालिकासम्बन्धी सभी ग्रन्थोंमें कोमारियोंको राजपूत बतलाया गया है, परन्तु किसी राजपूत जातिके साथ इनका किसी प्रकारका सम्बन्ध होने का विवरण नहीं देख पड़ता ।

* इसी जातिके नाम पर सौराष्ट्रका एक विशाल विभाग "झालावाड़" कहा जाता है ।

इनकी प्राचीन जीवनीसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत थोड़ी बातें विदित होती हैं; वे भी कल्पनाके जालमें उलझी हैं। ये अपनी उत्पत्ति वीर हनुमान्‌के वंशसे बतलाते हैं और इस परिचयकी दृढ़ताके लिये अपने राजाको "पुच्छरिया" अथवा लम्बी दुम धारण करनेवाला कहते हैं।

बहुत प्राचीन कालमें कोमारि राजपूत गुमली नामक नगरमें राज्य करते थे। भट्टग्रन्थोंसे विदित होता है कि उस नगरमें इस वंशके १३० राजाओंने राज्य किया। खृष्टीय आठवीं शताब्दिमें वे इतने प्रसिद्ध हो गये कि देहलीके पुनः बसानेवाले महाराज अनङ्गपालने उनके एक राजकुमारके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया; परन्तु उनका यह गौरव बहुत दिनोंतक नहीं रहा, क्योंकि (जैसा कि भट्टग्रन्थोंमें लिखा है) बारहवीं शताब्दिमें इनका शिल्ल नामक राजा शत्रुओंके द्वारा गुमलीकी राजासनसे उतार दिया गया। इस प्रकार जैत्व † अथवा कोमारि राजपूत उस समय जो अधःपतित हुए तो फिर उन्नति नहीं प्राप्त कर सके।

गोहिल।—किसी समय गोहिलोंकी बड़ी प्रतिष्ठा और सुख्याति थी; परन्तु समयके हेरफेरसे आज इनकी पूर्वप्रतिष्ठा और ख्याति न जाने कहां चली गई। आज गोहिलके वर्त्तमान वंशधर अपने पूर्वगौरवकी स्मृति त्यागकर वाणिज्यके द्वारा किसी प्रकार सुख दुःखसे अपना जीवननिर्वाह कर रहे हैं।

गोहिलोंने पहले पहल लूनी नदीके किनारे जूनाखीरगढ़में आकर रहना आरम्भ किया था। कब और कहांसे वे वहां आये इसका पता नहीं है। कहते हैं कि खिरवा नामक एक भील राजाको मारकर इनके पूर्वपुरुषोंने इस प्रदेशका अधिकार प्राप्त किया था।

खीरगढ़के सिंहासनपर एक एक करके गोहिलोंके बीस राजाओंने राज्य किया; अनन्तर बारहवीं शताब्दिके अन्तमें राठौर वीरोंने उनसे यह स्थान छीन लिया। फिर कुछ समय तक वे सौराष्ट्रके परमगढ़ नामक स्थानके अधिकारी रहे; परन्तु दुर्भाग्यसे वह नगर थोड़ेही दिनोंमें विध्वस्त हो गया। तब दो-दलोंमें विभक्त

† इसी जैत्व शब्द पर सौराष्ट्रके एक स्थानका जैतवार नाम पड़ा। इसके पश्चिम ओर जैत्वोंका वर्त्तमान निवासस्थान देख पड़ता है; वह अब पुरबन्दर कहा जाता है। जैत्व राजाओंकी उपाधि "राणा" है।

होकर वे भिन्न भिन्न दो स्थानोंमें जा बसे । एकने बगवामें आकर वहांके राजाके आश्रयमें रहना आरम्भ किया और दूसरेने सिहोरके निकट भावनगर तथा गोगोंको स्थापना की। भावनगर मिहीकी खाड़ीके किनारे पर है; यही गोहिलोंकी वर्त्तमान निवासभूमि है । इनके नामके अनुसार सौराष्ट्रका पूर्व भाग "गोहिलवार" कहा जाता है।

सारव्य वा सारीयाष्य।—इनकी ख्याति अथवा प्रतिष्ठाका कोई चिन्ह भारतमें नहीं मिलता । यदि इनको पूर्वप्रतिष्ठा और ख्यातिका कोई द्वार है तो केवल ऐतिहासिक दन्तकथाएँ। भट्टग्रन्थोंमें इनको "अभियद्मार" लिखा गया है, परन्तु दुःखका विषय है कि इनकी सारताका उदाहरण किसी ग्रन्थमें नहीं देख पड़ता।

सिलार वा सुलार।—इस समय सारव्योंकी भांति सिलारोंका भी केवल नाम-मात्र शेष रह गया है । इनके पूर्वजीवनकी छाया और पूर्वगौरवकी स्मृतिके लिये यदि कुछ बचा है तो केवल नामही नाम। कुछ विशेष इनके विषयमें विदित नहीं होता ।

टालमी (Ptolemy) और अन्यान्य प्राचीन विलायती भूगोलवेत्ताओंने सौराष्ट्र प्रदेशको लारिक नामसे लिखा है । बहुतोंका अनुमान है कि उक्त लारिक नाम इसी सुलार शब्दसे निकला है। किसी समय सौराष्ट्रमें लार जातिकी विशेष प्रसिद्धि थी; परन्तु अब उस प्रसिद्धिका केवल नाम मात्र रह गया है। आजदिन बौद्धधर्मके कुछ वणिकोंके सिवा किसीको इस नामसे अपना परिचय देते नहीं देखा जाता।

देवी।—किसी समय सौराष्ट्रमें यह जाति विख्यात थी, परन्तु अब इसके सम्बन्धमें कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता, केवल दन्तकथाओंसे इसकी प्राचीन ख्यातिका पता लगता है। हां, किसी किसी भट्टग्रन्थमें इसकी उत्पत्ति यदुकुलकी एक शाखासे बतलाई गई है, किन्तु इसका कोई प्रमाण नहीं लिखा है।

गर।—एक समय गरजाति राजस्थानमें सम्मानित और सुख्यात थी, परन्तु कभी भी विशेष प्रभुत्व नहीं पा सकी । बहुतोंका कथन है कि बङ्गदेशके प्राचीन राजाओंने इस कुलमें उत्पन्न होकर अपने नामके अनुसार लक्षणावती नगरीका नामकरण किया था।

प्राचीन भट्टग्रन्थोंमें ये लोग "अजमेरके गर" कहकर वर्णित किये गये हैं, इससे जान पड़ता है कि चौहानोंसे पहले इन्हींका वहां अधिकार था। बहुतेरे भट्टग्रन्थोंमें

लिखा है कि गरोंने अनेक युद्धोंमें महाराज पृथ्वीराजको सहायता को थी। दुःख का विषय है कि अब इनके प्राचीन गौरवका कोई चिन्ह नहीं देख पड़ता।

दर वा दोदा।—सभी वंशपत्रिकाओंमें इनके नामका उल्लेख है, किन्तु इनकी जीवनीके सम्बन्धमें भट्टग्रन्थोंसे कुछ नहीं विदित होता। जिन दरोंपर विजय प्राप्त कर चौहानवीर पृथ्वीराजने अपना गौरव माना था कालचक्रमें पड़कर उनका प्राचीन वृत्तान्त लोगोंकी दृष्टिसे एकदम लोप हो गया।

घरवाल।—घरवालकुल वीरत्वरूपी भूषणसे भूषित था, कदाचित् इसी कारण इसका नाम भी राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें सम्मिलित किया गया, परन्तु आज तक किसी अन्य राजपूतकुलसे इसका विवाहसम्बन्ध नहीं हुआ। ये लोग सबसे पहले काशीमें रहते थे। इनकी एक शाखाका नाम "बुन्देल" है; बहुतोंका अनुमान है कि इसी बुन्देलसे बुन्देलखण्डका नाम रखा गया। समय पाकर घरवालके स्थानमें यही बुन्देल नाम प्रसिद्ध हुआ।

सन् १२०० ई०में मानवीर नामक एक वीर पुरुष बुन्देलकुलमें उत्पन्न हुआ। इससे इस कुलने गौरव पाया। मानवीरकी तेरहवीं पीढ़ीमें मधुकरशाह नामक एक प्रतिष्ठावान् राजाका जन्म हुआ; इसी मधुकरने प्रसिद्ध ओरछा राज्य स्थापित किया। शाह अकबरके राजत्वकालसे बुन्देलोंकी वीरताका विशेष विवरण मिलता है। मुगलोंके समयमें इन्होंने जो वीरत्व प्रकट किया था वह अकबर शाहजहां और औरंगजेबकी जीवनी पढ़नेसे स्पष्ट विदित हो सकता है।

बीरगूजर।—भट्टोंने इनको सूर्यवंशी लिखा है। गिह्लोटोंकी भांति ये भी अपनी उत्पत्ति रामचन्द्रके पुत्र लवसे बतलाते हैं। एक समय धुन्दर * प्रदेशमें इन्होंने विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। मछेरीका प्रसिद्ध पहाड़ी दुर्ग राजोर † बहुत काल तक इनकी राजधानी था। राजगढ़ और अलवा भी इनके अधिकारमें थे; परन्तु कुशावहोंने इनको इन स्थानोंसे निकालकर वहां अपना आधिपत्य जमाया।

---

* जयपुर और मछेरी प्राचीन धुन्दर राज्यमें सम्मिलित थे।

† वर्त्तमान राजगढ़से आठ कोस पश्चिम ओर राजोर दुर्गका टूटा फूटा चिन्ह अब भी देख पड़ता है। उसमें महादेवजीका एक पुराना मन्दिर है। यह मन्दिर तरह तरहकी शिलालिपियोंसे भरा है।

सेंगर।—इनके विषयमें कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। यह भी नहीं कहा जा सकता कि इन्होंने कभी गौरव वा प्रतिष्ठा प्राप्त की थी या नहीं। यमुना तीर पर जगमोहनपुर है, वही इनके प्राचीन गौरवके परिचयका एकमात्र द्वार है।

सीकरवाल।—सेंगरोंकी भांति ये भी कभी प्रतिष्ठा वा प्रसिद्धि नहीं पा सके। चम्बलके किनारे यदुवतीके निकट इन्होंने सीकरवार नामक एक नगर स्थापित किया था, वह इस समय ग्वालियरराज्यके अधीन है।

बाईस।—इस कुलने भी राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें स्थान प्राप्त किया है, परन्तु चन्दवरदायी और कुमारपालचरितमें इसका नाम नहीं पाया जाता, अतएव यह बात सहजमें समझी जा सकती है कि यह कुल कभी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त कर सका। इस समय यह असंख्य शाखाओंमें विभक्त हो गया है।

देहिया।—यह राजकुल प्राचीन है। इस कुलके लोग सिन्धु और शतद्रुके सङ्गमके निकट रहते थे। जैसलमेरके भट्टोंके ग्रन्थोंमें इनका कुछ विवरण मिलता है। इनके नाम और राजस्थानके विषय पर विशेष ध्यान देनेसे विदित होगा कि सिकन्दरनिर्दिष्ट "दाहो" येही थे।

जोहिया।—ये और देहिया प्रायः एक साथ रहते थे, इसीसे इनका और उनका नाम एकत्र देख पड़ता है, परन्तु कुछ कालतक एक साथ रहनेके बाद जोहिया "गारा" पारकर मरुभूमिमें चले आये। प्राचीन भट्टग्रन्थोंमें ये "जङ्गलदेश के नरेश"के * नामसे वर्णित किये गये हैं।

मोहिल।—किस विशेष गुणके कारण मोहिल राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें स्थान पा सके इसका पता नहीं है। भट्टोंके काव्यग्रन्थोंसे इतना विदित होता है कि आजकल जहां बीकानेर राज्य है वहीं ये लोग राज्य करते थे, पश्चात् राठौरोंने पहुँचकर इनको वहांसे हटा दिया।

निकुम्भ।—सभी भट्टग्रन्थोंसे पता लगता है कि किसी समय निकुम्भ बहुत प्रसिद्ध थे, परन्तु क्योंकर उन्होंने प्रसिद्धि प्राप्त की थी यह नहीं विदित होता। गिह्लोटोंसे पहले मण्डलगढ़पर इन्हींका अधिकार था।

राजपाली।—इनका कोई विशेष विवरण प्रकट नहीं है। भट्टकवियोंने इनको

* "Lords of Jungle-Desh"

राजपालि, राजपालिक अथवा केवल पाल लिखा है। कहीं कहीं पर लिखा है कि राजपालोंकी उत्पत्ति शक जातिसे हुई है।

दाहिर।—केवल कुमारपालचरितके वर्णनके अनुसार दाहिरोंको राजस्थानके छत्तीस राजकुलोंमें स्थान दिया जा सकता है। वास्तवमें इनका सच्चा इतिहास आजतक सङ्कलित नहीं हो सका। जब चित्तौड़ पर पहले पहल मुसलमानोंने आक्रमण किया था उस समय वहांके नरेशकी सहायताके लिये जो राजे युद्धके मैदानमें गये थे उनमें देबिलके अधिपतिका * भी नाम जो दाहिरकुलका था देख पड़ता है। सिन्धदेश इस अधिकारीके शासनमें था। अबुलफजलने जिस देबिलपति की शोचनीय मृत्युका हाल लिखा है वह इसी दाहिरकुलमें उत्पन्न हुआ था।

दाहिमा।—एक समय इस राजकुलकी बड़ी क्षमता और प्रतिष्ठा थी; उस समय इस कुलके वीर नृपतियोंके गौरवसे राजपूत जाति गौरवान्वित हुई थी; परन्तु कालके बहावमें पड़कर इनकी वह क्षमता, प्रतिष्ठा और गरिमा कहां चली गई सो नहीं कह सकते। बियाना नामक प्रसिद्ध पहाड़ी दुर्ग इनके अधिकारमें था। इस कुलके राजे चौहानवीर पृथ्वीराजके अधीन सामन्त राजाकी भांति राज्य करते थे। सामन्त भावसे रहने पर भी एक समय उन्होंने जो प्रचण्ड वीरता प्रकट की थी उसका वर्णन चन्दकविने अपने काव्यग्रन्थमें बड़ी सुन्दर रीतिसे किया है। महाराज पृथ्वीराजके अधीन इस वीरवंशके तीन वीर भाई तीन उच्च पदोंपर नियुक्त थे। उन तीनोंका नाम कैमास, पुन्दीर तथा चोयँदराय था। बड़ा कैमास पृथ्वीराजके यहां प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त था; जितने दिन वह इस पदपर आरूढ़ था उतने दिन राज्यकी बड़ी उन्नति थी; दूसरा पुन्दीर सीमाकी रक्षाके लिये लाहौरमें रहता था; तीसरा चोयँदराय पृथ्वीराजका प्रधान सेनापति था। जिस भयङ्कर युद्धमें भारतगौरवरूपी सूर्य्य अस्त हो गया उसमें दाहिमवीर चोयँद-

* गिह्लोटकुलकी तालिका लिखनेवालोंने भूलसे "देबिल"की जगह "दिल्ली" लिख दिया है, परन्तु जांच करनेसे मालूम होता है कि उस समयतक देहलीका कोई चिह्न भी नहीं था। चित्तौड़के भट्टकवियोंके ग्रन्थोंमें देबिलराजवंशसम्बन्धी बहुत संक्षिप्त विवरण मिलता है, परन्तु वह पूर्ण विश्वासके योग्य है।

रायकी जो वीरता देखनेमें आई थी उसका विवरण चन्दकविके ग्रन्थमें उज्ज्वल अक्षरोंमें वर्त्तमान है। और तो क्या, अल्लाउद्दीनके समयके मुसलमान इतिहासलेखकोंने भी उसकी आश्चर्यमयी वीरताको मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हुए लिखा है कि—"खाण्डेरायकी × जबर्दस्त तलवारोंके आंचसे अल्लाउद्दीन बड़ी मुश्किलोंसे अपने तईं बचाकर निकल सका था।" उसी कालयुद्धमें भारतवासियोंका अधःपतन होनेके साथ साथ पृथ्वीराजका प्रधान सहायक मुसलमानदर्पहारी महावीर चोयँदरायका कुल भी समूल नष्ट हो गया †।

× कई फ़ारसी इतिहासलेखकोंने चोयँदरायको खाण्डेरायके नामसे लिखा है।

† महाराज पृथ्वीराज दाहिमवीर चोयँदरायके बहनोई थे। चोयँदरायकी बहिनके गर्भसे उनके रणसिंह नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। चन्दकविने पृथ्वीराज और दाहिमकुमारीके विवाहका दृश्य बड़ी उत्तम रीतिसे लिखा है।



मेवाड़ ।

पहला अध्याय ।

राजस्थान-भाग;—प्रमाणके लिये अनेक भट्टग्रन्थों और शिलालिपियोंका विवरण;—कनकसेन;—सौराष्ट्रमें कनकसेनका आना;—वल्लभीपुर;—शिलादित्य;—म्लेच्छोंका आक्रमण;—वल्लभीपुरका पतन।

आर्यवीर राजपूतजातिकी वंशावली और उत्पत्तिके सम्बन्धमें यथासाध्य लिखकर अब हम विशाल राजस्थान प्रदेशका वृत्तान्त लिखते हैं।

सुविस्तृत राजस्थान् आठ राज्योंमें विभक्त है । टाड साहबने जिस क्रमसे इन आठों राज्योंका विवरण लिखा है उसी क्रमका हम भी अनुसरण करते हैं—

१—मेवाड़ वा उदयपुर ।

२—मारवाड़ वा जोधपुर ।

३—बीकानेर वा किशनगढ़ ।

४—कोटा } वा हारावती ।
५—बूंदी }

६—अम्बर वा जयपुर ।

७—जैसलमेर ।

८—मरुभूमि ।

विशाल राजस्थानके इन आठ विभागोंमें मेवाड़ और जैसलमेर राज्योंकीही विशेष प्राचीनता और गौरवकी बातें सुन पड़ती हैं । जिस दिन भारतभूमिकी स्वाधीनताका लोप हुआ उस दिनको बीते आज आठ शताब्दियां हो गई हैं। पराधीनताके इतने लम्बे समयमें भारतवर्षमें अनेक राजनैतिक विप्लव सङ्घटित हुए, अनेक विदेशी और विजाति राजाओंने आकर भारतवासियोंके भाग्यचक्रको पलटे दिये और भारतके हृदयका रक्त चूसा । उनके कठोर शासनके कारण यहांके

कितनेही राज्य चूर्णविचूर्णित होकर एकबारही मट्टीमें मिल गये, कितने राज्योंका आज सामान्य चिह्न भी नहीं देख पड़ता। इस लम्बे समयमें भारतवर्षके अन्यान्य राज्योंकी भांति मेवाड़ राज्यको भी कितनेही कठोर प्रभुओंने अपने कठिन पदोंसे दलित किया, कितने हिन्दूविद्वेषी आक्रमणकारी आकर इस राज्यका बहुत धन-रत्न लूट ले गये, यहांके नगर ग्राम नष्ट भ्रष्ट कर गये; परन्तु इतना होने पर भी मेवाड़राज्यके प्राचीन विस्तारमें कुछ विशेष कमी नहीं हुई। यद्यपि जिस गौरवके बलसे एक समय मेवाड़ समग्र राजस्थानके शीर्षस्थान पर पहुँच गया था आज उसका वह गौरव नहीं है, यद्यपि समयके माहात्म्यसे ऊँचाईसे वह एकदम निचाईमें गिर पड़ा है, तौभी पहले वह जितना विस्तृत था आज भी उतना ही है। और तो क्या, जिस समय महमूदगजनवी सिन्धुनदका "नीलजल" * पार कर भारतवर्षमें आया था उस समय मेवाड़की जितनी लम्बाई चौड़ाई थी आज आठ सौ वर्ष बाद वर्त्तमान शोचनीय अधःपतित अवस्थामें भी उसकी प्रायः उतनी ही लम्बाई चौड़ाई देख पड़ती है।

जिन प्राचीन ग्रन्थोंमें मेवाड़राज्यका ऐतिहासिक वृत्तान्त अधिक वा कम प्रकटित है उनमें "जयविलास" "राजरत्नाकर" और "राजविलास" विशेष प्रसिद्ध और विश्वासके योग्य हैं। इनके सिवा "खुमानरायसा" "मामदेव प्रशिष्ठ" तथा अनेक जैन और भट्टग्रन्थोंमें भी इस राज्यके सम्बन्धमें कुछ कुछ वृत्तान्त देख पड़ता है। यद्यपि इन ग्रन्थोंकी लिखावटसे मतभेद प्रकट होता है, तथापि सावधानीके साथ देखनेसे ऐतिहासिक सत्यता स्पष्ट रूपमें बाहर निकल आती है। उन्हीं ऐतिहासिक बातोंके आधारपर मेवाड़का वृत्तान्त नीचे लिखा जाता है †।

* टाड साहब कहते हैं कि जलका रङ्ग नीला होनेके कारण मिश्रदेशका वृहत् नद "नीलनद" कहा जाता है। सिन्धु शब्दके साथ तातारी और चीनी कैसेही दो अन्य शब्दोंका मिलान दिखाकर वे और भी कहते हैं कि दोनों शब्द नदी अर्थके बोधक हैं, इसीसे सिन्धुनदके उत्तरके निवासी उसको आबेसिन (अर्थात् श्रेष्ठ नद) कहते थे।

† टाड साहबने मेवाड़का इतिहास लिखनेसे पहले जिन उपकरणोंका संग्रह किया था उनका संक्षिप्त विवरण नीचे लिखा जाता है। इन उपकरणों वा मसालों

पूर्वमें कहा जा चुका है कि राजस्थानके भट्टकवियोंने महाराज कनकसेनको-को मेवाड़का प्रतिष्ठाता बतलाया है; उनके मतसे महाराज कनकसेन भारतवर्षके उत्तर ओरके किसी प्रदेश (सम्भवत: लोहकोट) में वास करते थे और फिर संवत् २०० (सन् १४४ ई०) में वहांसे सौराष्ट्रमें चले आये थे। जयपुरनरेश महाराज

के संग्रह करनेमें उनको कितना कष्ट, यत्न और परिश्रम करना पड़ा था सो स्वयं पाठकोंकी समझमें आ सकता है।—

उदयपुरकी राजसभामें जानेसे कई वर्ष पहले भट्टोंके यहां जा जाकर टाड साहबने मेवाड़के राजाओंकी वंशपत्रिकाकी हस्तलिखित कापियां प्राप्त की थीं। इसके अतिरिक्त और भी कई वंशतालिकाएँ उनको मिली थीं। राणाकी अनुमति लेकर उन्होंने उनके पुस्तकालयके हस्तलिखित लेख पढ़े थे और प्रयोजनके अनुसार विशेष विशेष ग्रन्थोंकी नकल भी उतार ली थी। उनमेंसे कुछ प्रयोजनीय ग्रन्थोंके नाम नीचे प्रकाशित किये जाते हैं।

१—खुमानरायसा। यह ग्रन्थ बहुत पुराना न होने पर भी सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रयोजनीय है। इसमें सूर्यवंशी राजाओंका वृत्तान्त है।

२—राजविलास। मानकुवेश्वरद्वारा ब्रजभाषामें लिखित।

३—राजरत्नाकर। सदाशिवभट्टविरचित। (राजविलास और राजरत्नाकर ये दोनों ग्रन्थ राणा राजसिंहके समयमें रचे गये थे)

४—जयविलास। राजसिंहके पुत्र जयसिंहके राजत्वकालमें सङ्कलित। -(मेवाड़के राजाओंके वीरत्व और सामरिक कार्योंकी प्राचीन घटनाओंके आधारपर लिखित)

५—ममदेव प्रशिष्ठ। (कमलमीरके देवमन्दिरमें जो शिलालिपियां रक्षित हैं इस ग्रन्थमें उन्हीं सभीकी नकल लिखी है)

६—शत्रुञ्जयमाहात्म्य—(जैनग्रन्थ)

ऊपरके सब ग्रन्थ हस्तलिखित हैं। इनके अतिरिक्त कितने अप्रसिद्ध भट्टग्रन्थों, वंशपत्रिकाओं, शिलालिपियों, ताम्रपत्रों, जैनग्रन्थों और आईने-अकबरी, शाहनामा, जहांगीरनामा, फ़रिश्ता प्रभृति अनेक फ़ारसी तथा अरबीके ग्रन्थोंसे मेवाड़का ऐतिहासिक वृत्तान्त संग्रह किया गया है।

जयसिंहने भट्टोंके इस मतके विषयमें कहा है कि वह ठीक है। उन्होंने अपने बनाये इतिहासमें इस मतकी पुष्टि करते हुए सूर्य्यवंशसे राणाकुलका मिलान किया है।

महाराज कनकसेन सुदूर लोहकोट राज्य त्यागकर सौराष्ट्र प्रदेशमें अवश्य आये, परन्तु किधरसे होकर वे दक्षिणमें आये इसका निरूपण करना असम्भव है; क्योंकि किसी भट्टग्रन्थमें इस सम्बन्धमें कोई विवरण नहीं मिलता। कहते हैं कि जिस समय वे सौराष्ट्रमें आये उस समय प्रमारवंशी कोई राजा वहां राज्य करता था; महाराज कनकसेन बड़ी वीरताके साथ उस राजासे लड़े और उसे उसके सिंहासनसे उतारकर उसपर आप बैठे और बहुत शीघ्र अपना राजत्व उन्होंने दृढ़ कर लिया। इसके पश्चात् १४४ ई० में उन्होंने वीरनगर नामक एक नवीन नगर स्थापित किया।

इनकी चौथी पीढ़ीमें विजयसेन नामक एक राजा हुआ; कहा जाता है कि इसी विजयसेनने विजयपुरराज्य स्थापित किया।

बहुतोंका अनुमान है कि सौराष्ट्रके उत्तर ओर प्राचीन विजयपुर अवस्थित था; कालचक्रमें पड़कर वह नगर विध्वस्त हुआ और उसके स्थानमें वर्त्तमान धोलका नगरी स्थापित की गई। भट्टग्रन्थोंके देखनेसे विदित होता है कि महाराज विजयसेनने वल्लभीपुर और विदर्भ नामक दो और नगर स्थापित किये थे। उन नगरोंमें वल्लभीपुर विशेष प्रसिद्ध है; परन्तु दु:खका विषय है कि इस समय इस बातका ठीक ठीक पता लगाना बहुत कठिन है कि वल्लभीपुर किस स्थानमें प्रतिष्ठित किया गया था, तथापि अनुसन्धान करनेवाले पुरातत्ववेत्ताओं और परिव्राजकोंके सूक्ष्म अनुसन्धानसे यह बात मानी गई है कि वर्त्तमान भावनगरसे पांच कोस पर उत्तर पश्चिम दिशामें वल्लभी नामकी जो एक नगरी है वही प्राचीन वल्लभीपुरकी बची हुई स्मृति है। शत्रुञ्जयमाहात्म्य नामक जैनग्रन्थसे इसकी सत्यताका प्रमाण मिलता है।

बहुतोंका कथन है कि उक्त वल्लभीपुरसे ही मेवाड़का राजवंश निकला है। यह बात सच है कि नहीं इसके स्थिर करनेमें अनेक लोगोंने मतभेद प्रकट किये हैं, परन्तु कुछ दिन हुए राणाजीके राज्यके एक टूटे देवालयसे एक शिला निकली है जिसमें मेवाड़राजकुलका पूर्ववृत्तान्त संक्षेपमें लिखा है। यथासम्भव घटनाओंका वर्णन करके अपने लिखे वृत्तान्तकी सत्यता प्रमाणित करनेके लिये लिपिकर्त्ताने

एक स्थानमें लिखा है कि "ये घटनाएँ सचमुच हुईं या नहीं इसकी साक्षी वल्लभी की दीवारें हैं।" इनके अतिरिक्त राणा राजसिंहकी शासनसम्बन्धिनी घटनाओंके आधारपर जो एक ग्रन्थ बना है उसकी भूमिकामें लिखा है कि "पश्चिममें सौराष्ट्र नामक एक प्रसिद्ध देश है; म्लेच्छोंने आक्रमण करके वहांके बालकनाथों पर विजय प्राप्त किया। वल्लभीपुरके इस पतनके समय प्रमार राजाकी एकमात्र कन्याको छोड़ सब मारे गये।" एक दूसरे कुलाख्यानग्रन्थके देखनेसे विदित होता है कि "वल्लभीपुरके विध्वस्त होने पर वहांके निवासियोंने मरुदेश (मारवाड़) में आकर बल्ली, सन्डेरी और नादोल ये तीन नगर स्थापित किये।" ये तीनों नगर आजतक प्रसिद्ध हैं। खृष्टीय छठी शताब्दिके प्रारम्भमें जिस समय म्लेच्छोंने वल्लभीपुरको विध्वस्त किया था उस समय वहां जो जैनधर्म्म वर्त्तमान था आज इतने दिन बाद भी वह प्राचीन जैनधर्म्म वहां उसी भांति प्रचलित दिखाई देता है।

उक्त तीनों नगरोंके अतिरिक्त एक और नगरका नाम देख पड़ता है; अर्थात् गयनीका *। कहा जाता है कि सौराष्ट्रसे निकलकर महाराज शिलादित्यके परिवारवालोंने उक्त गयनी नगरीमें अन्तिम बार आश्रय लिया था। भट्टोंके एक काव्यग्रन्थकी सूचनामें लिखा है कि "म्लेच्छोंने महाराज शिलादित्यकी गजनी नगरी जीत ली और उस नगरीकी रक्षा करते समय उनके मुख्य मुख्य सहायक लड़ाईमें मारे गये। उनका वंश निर्मूल हो गया; उस वंशका केवल नाममात्र शेष रह गया है।"

इसका पता नहीं लगता कि किस म्लेच्छजातिने वल्लभीपुर विध्वस्त किया था।

* गयनी वा गजनी।—यह आधुनिक काम्बेका प्राचीन नाम है। वर्त्तमान नगरके तीन मील दक्षिण ओर इस नगरका टूटा फूटा चिन्ह अब भी देख पड़ता है। भट्टग्रन्थोंसे ऐसे प्राचीन और लुप्त नगरोंका पता लगता है। उन नगरोंका विवरण पढ़नेसे विदित होता है कि एक समय बालकरायोंने भारतके दक्षिण प्रदेशमें राज्य किया था। उन ग्रन्थोंमें लिखा है कि वर्त्तमान देवगढ़का प्राचीन कालमें तिलतिलपुर पाटण नाम था। इस तिलतिलपुर पाटणमें मेवाड़नरेशके पूर्वपुरुष राज्य करते थे। टाड साहबने बड़ी कठिनाइयोंसे इस नगरके प्राचीन स्थानका पता लगाया है। अब स्पष्ट जाना जा सकता है कि तिलतिलपुर पाटण सौराष्ट्रमेंही है।

अवश्यही पौराणिक आकहीपसे वह आई होगी; किन्तु कोई इतिहासवेत्ता यह स्थिर नहीं कर सका कि आक्रमण करनेवाली कौन जाति थी। प्राचीन इतिहासों के देखनेसे विदित होता है कि खृष्टीय दूसरी शताब्दिमें सिन्धुनदके किनारे ब्राम-नगरमें कुछ पारथ रहते थे; कदाचित् उन्होंने वल्लभीपुर पर आक्रमण किया था। कहते हैं कि ब्रामनगर बहुत दिनोंतक प्राचीन यादवोंके अधिकारमें था। सुप्रसिद्ध विद्वान् एरियनने इसको मीनगढ़ † और अरबी भूगोलवेत्ताओंने मनकर नामसे लिखा है।

सिन्धुनदके तीरके जिस विशाल प्रदेशमें पारथगण वास करते थे वह अवतक अनेक विदेशी आक्रमणकारियोंके लिये द्वारकी भांति खुला था। उसी पथसे प्रवेश कर अनेक जातियोंने पवित्र भारतभूमिका नाश किया। जित, हून, कोमारि, काथि, मकवाहन, बल्ल और अश्वारिया प्रभृति जिन आक्रमणकारियोंने आकर सौराष्ट्र प्रदेशमें विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की थी वे सब इसी द्वारसे आये थे। जिस समय ये जातियां भारतमें आईं वह समय उनके लिये मानो स्वर्णयुग था। उसी समय वे मध्य एशियाकी ऊंची भूमि छोड़कर एकसाथही योरप और भारतकी ओर चल पड़ी थीं। सुप्रसिद्ध परिव्राजक कासमस चीननरेश ‡ जष्टीनियनके राजत्वकालमें

† मीनगढ़के सम्बन्धमें विलायती पण्डितोंकी लिखावटसे बहुतसी बातें विदित होती हैं। डेनविलसे लेकर सर हेनरी पोटिञ्जर तक सबने इसके ठीक स्थानका पता लगानेकी चेष्टा की थी और उनमें कोई कोई अनुसन्धानकर्त्ता महाशय कृत-कार्य्य भी हुए थे। खलीफा मन्सूर (अब्बासी) के सेनापति उमरने सिन्धुदेश जीत कर मीनगढ़का नाम रखा। उस समयसे बहुत दिनोंतक इसका यही नाम रहा। डेनविलने इसको २६° लघिमाके निकट और उलगबेगने उससे कुछ उत्तर २६° ४' में बतलाया है। जो हो, टाड साहबने बहुत अनुसन्धान तथा एरियन, टालमी, अलबिरूनी, एद्रिसी, डेनविल आदि पुरातत्त्ववित् पण्डितोंके भिन्न भिन्न मतोंका मिलान करके अन्तमें स्थिर किया है कि सिन्धुनदके किनारे सिवान पर (२६°११') मीनगढ़ अवस्थित है।

‡ इतिहासोंसे पता लगता है कि बहुत प्राचीनकालमें भारत और चीनके नृपतियोंमें परस्पर पत्रव्यवहार हुआ करता था; विशेषकर चीनी साम, सौम और तामवंशी राजाओंके राजत्वकालमें भारतके नृपतियोंने उनके यहां अपने दूत भेजे थे।

भारतवर्षमें था। वह वल्लभीराज्यका कच्छाच नगर देखने गया था। उसने अपनी भ्रमणपुस्तकमें लिखा है कि ठीक वल्लभीपुरके विध्वस्त होनेके समय कुछ हून सिन्धुनदके किनारेके देशमें अपनी बस्ती स्थापित करके रहने लगे थे। उस समय जो उनका राजा वा सरदार था उसका नाम गोबस था।

इधर एरियनकी लिखावटसे कुछ दूसरीही बात प्रतीत होती है। खृष्टीय दूसरी शताब्दिमें एरियन साहब बरुगजा (भड़ौच) नगरमें थे। वे कहते हैं कि सिन्धु और नर्मदाके बीचके विशाल देशमें उस समय पार्थोंका विस्तृत राज्य स्थापित था; मीनगढ़ उनकी राजधानी थी। अब यहां यह पता नहीं लगता कि कासमसने पार्थोंको ही हून नामसे लिखा है अथवा हूनोंने पार्थोंको निकाल कर वहां अपना आधिपत्य जमाया था। अस्तु, यह तो अवश्य मानना पड़ेगा कि इन दोनोंमेंसे किसी एक जातिने वल्लभीपुरका ध्वंस किया था।

सूर्यवंशी महाराज कनकसेनकी आठवीं पीढ़ीमें शिलादित्य नामक एक राजा उत्पन्न हुआ। इसीके शासनकालमें म्लेच्छोंने वल्लभीपुरपर आक्रमण करके उसे विध्वस्त किया। महाराज शिलादित्यके सम्बन्धमें एक विचित्र कहानी सुननेमें आती है। उस कहानीके जिस अंशसे उनके जन्म और उनकी बाल्यावस्थाका विवरण प्रकट होता है आवश्यकता समझकर उसे हम यहां पर उद्धृत करते हैं। वह यों है कि—"गुर्जर राज्यमें कैयर नामक एक नगर है; उस नगरमें देवादित्य नामक एक वेदविशारद ब्राह्मण वास करता था। उसके एक कन्या थी; उसका नाम सुभगा था। देवादित्यने उस कन्याका विवाह कर दिया; परन्तु वह अभागिनी विवाहकी रात्रि को ही विधवा हो गई। सुभगाने अपने गुरुसे सूर्यके बीजमन्त्रकी शिक्षा प्राप्त की थी। एक दिन असावधानीमें भूलकर उसने वह मन्त्र पढ़ दिया; उसके उस मन्त्रके पढ़तेही सूर्य भगवान्‌ने उसके सम्मुख प्रकट होकर उसका आलिङ्गन किया। यह कार्य करके सूर्य भगवान् तुरन्त अन्तर्धान हो गये; थोड़ेही दिनोंमें सुभगाके गर्भलक्षण दिखाई दिये। यह देख देवादित्य मनमें बहुत दुःखित हुआ; परन्तु जब योगबलसे उसने इस गर्भका मूल कारण मालूम कर लिया तब उसका सब खेद और मनोविकार मिट गया; तथापि सुभगाको अपने घरमें न रखकर उसने एक दासीके साथ वल्लभीपुर भेज दिया। उस नगरमें जाकर सुभगाने जोड़ा (पुत्र कन्या)

प्रसव किया। बड़ा होने पर उसका पुत्र पढ़नेके लिये विद्यालयमें भेजा गया। उसके साथ पढ़नेवाले बालक उसका जन्मसम्बन्धी वृत्तान्त जानकर उसे "गैबी" (अप्रकट) नामसे पुकारने और उसपर तरह तरहके अत्याचार करने लगे। इन अत्याचारोंसे उसे बहुत दुःख उत्पन्न होता; सोते जागते किसी समय उसके चित्त को शान्ति न मिलती; मनमें सदैव भांति भांतिकी चिन्ताएँ और अनेक प्रकारके वितर्क उठा करते। उसके सहपाठी उससे उसके पिताका नाम पूछते; परन्तु वह उत्तर न दे सकनेके कारण शिर झुका लेता। वास्तवमें यह क्या सामान्य दुःखकी बात हो सकती थी? जिस पिताने उसको इस जगत्‌में उत्पन्न किया वह पिता कौन है इसको वह जान नहीं सकता था, एक बार अपने उत्पन्न करनेवालेको उसने देखा भी नहीं था, कभी पिता शब्दका उच्चारण करनेका भी उसे अवसर नहीं मिला था,—यह यन्त्रणा सुभगाके बालक तनयके सुकुमार हृदयमें बहुत ठेस पहुँचाने लगी; इतनी ही उमरमें उसे नाना प्रकारकी चिन्ताओंने आ घेरा। प्रति दिन उसके सहपाठी बालक अनेक प्रकारसे उसके पिताका नाम उससे पूछ पूछ कर उसका उपहास करते; मनका दुःख मनहीमें छिपाकर वह रोया करता और मातासे सब वृत्तान्त कहकर बारम्बार उससे अपने पतिका नाम बतानेका आग्रह करता; परन्तु सुभगा कुछ उत्तर न देती, वरन् उसे गोदमें बिठाकर अनेक प्रकारसे धैर्य धराती। इस भांति कुछ दिन बीत गये। धीरे धीरे बालक समझदार हुआ। ज्ञान उत्पन्न होनेके साथ साथ उसके हृदयका क्षोभ भी बहुत बढ़ गया।

"एक दिन जब उसके सहपाठियोंने बहुत कष्ट पहुँचाया तब क्रोधमें भरे हुए सिंहके बच्चेके समान अपनी माताके निकट आकर वह बड़े कठोर स्वरमें बोला— "यदि तू पिताकी बातें मुझे न बतलावेगी तो मैं इसी क्षण तुझे मार डालूँगा।" पुत्रका भयानक वाक्य समाप्त होते न होते स्वयं सूर्य भगवान् उसके सामने आ उपस्थित हुए और सब वृत्तान्त उससे कह तथा उसके हाथमें एक पत्थरका टुकड़ा देकर बोले—"इस शिलाखण्डको लेकर तुम जिसे अर्पण करोगे वह तुरन्त मर पड़ेगा।" "गैबी"ने उस शिलाखण्डकी सहायतासे अपने साथमें पढ़नेवाले बालकों को परास्त किया। धीरे धीरे यह समाचार वल्लभीनरेशके कानोंतक पहुँचा। उन्होंने "गैबी"को अपने यहां बुलवाकर बहुत डराया धमकाया; इसपर उसने सूर्य-

द्वारा प्राप्त उसी शिलाखण्डकी सहायतासे राजाको भी परास्त किया और उसके सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया। उसी समयसे "गैवी"का नाम शिलादित्य पड़ा *।"

वल्लभीपुरके महाराज शिलादित्यके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी ऐसीही अद्भुत और मनोरञ्जक कहानियां सुन पड़ती हैं। कहते हैं कि वल्लभीपुरमें उस समय "सूर्यकुण्ड" नामक एक पवित्र कुण्ड था। जब कभी युद्ध करना पड़ता तब महाराज शिलादित्य उस कुण्डके समीप जाकर भगवान् दिवाकरसे सहायताकी प्रार्थना करते; प्रार्थना करतेही सूर्यका रथवाही सप्ताश्व नामक सातमुखवाला बड़ा घोड़ा उनको दिखाई देता। उस प्रचण्ड घोड़ेको अपने रथमें जोतकर शिलादित्य युद्धक्षेत्रमें जाते और शत्रुओं पर अवश्य विजय प्राप्त करते; परन्तु भीषण म्लेच्छयुद्धके समय अपने किसी पापी मन्त्रीकी विश्वासघातकतासे वे उस घोड़ेको न ले सके। उनका एक दुष्ट सचिव यह गूढ़ बात जानता था। उसने शत्रुओंसे सब हाल कह कर गोरक्तके द्वारा उस सूर्यकुण्डको दूषित करनेकी सलाह दी। उसकी सलाहके अनुसार पवित्र सूर्यकुण्ड अपवित्रित किया गया, महाराज शिलादित्यके सौभाग्यके मार्गमें कांटे डाले गये, उनके नाशका उपाय किया गया। दुष्ट म्लेच्छगण दलबलसहित उनके नगरमें आकर उथलपुथल मचाने लगे। उस समय बड़ी शीघ्रतासे महाराज उस कुण्डके समीप गये और कातर स्वरसे बारम्बार प्रार्थना करने लगे; परन्तु उनकी प्रार्थनाका कुछ फल नहीं हुआ; बहुत करुणा और अनुनय विनय करने पर भी वह सातमुखवाला घोड़ा दिखाई नहीं दिया; तब महाराज शिलादित्य बड़े निराशामें पड़े, तथापि बड़ी वीरता और तेजस्वितासे उन्होंने शत्रुओंका सामना किया और लड़ते लड़ते अन्तमें वे अपने साथियोंके सहित वीरगतिको गये। उन्हींके साथ साथ उनका वंशवृक्ष भी समूल नष्ट हो गया †।

* भारतवर्षके इतिहासमें और एक शिलादित्यका नाम मिलता है; परन्तु वह वैश्य था और खृष्टीय सातवीं शताब्दिके मध्यभागमें कन्नौजके सिंहासन पर आरूढ़ था। प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग इसी शिलादित्यकी राजधानीमें गया था।

Vide Travels of Houen Sheong. P. 215.

† शकों और पारसियोंमें भी सूर्यकुण्डका विवरण प्रायः देख पड़ता है। इस

दूसरा अध्याय।

गोहका जन्मविवरण;—ईडरराज्यकी प्राप्ति;—गिह्लोट शब्दकी उत्पत्ति,—बप्पाका विवरण;—अगुणापानोर;—बप्पाका शैवमन्त्रग्रहण;—चित्तौड़पर अधिकार;—आश्चर्यमय अन्त; दूसरी और ग्यारहवीं शताब्दिके बीचके मेवाड़सम्बन्धी चार प्रधान कालोंका निरूपण।

महाराज शिलादित्य वीरगतिको गये; बल्लभीपुर विध्वस्त हुआ; और उनके आत्मीय सम्बन्धी सैन्य सामन्त सभी उनके साथ इस संसारसे विदा हो गये।

महाराज शिलादित्यकी बहुतसी पत्नियोंमेंसे रानी पुष्पवतीको छोड़ बाकी सब उनके साथ जल मरीं। विन्ध्यपर्वतके नीचे चन्द्रावती नाम्नी एक प्रसिद्ध नगरी है। यह नगरी उस समय प्रमारवंशी राजाओंके अधीन थी। रानी पुष्पवती इसी पवित्र प्रमारकुलमें उत्पन्न हुई थी। इस अनर्थकर युद्धसे पहले उसके गर्भलक्षण दिखाई दिये थे। पुत्रकी कामना करके इससे पूर्व उसने अनेक देव देवियोंकी विशेष कर अपने पिताके राज्यकी जगन्माता भवानीकी बहुत पूजा की थी। इस

वृत्तान्तके साथ जो काल्पनिक बातें मिली हैं उनको अलग कर देनेसे असल विषय का पता लग जाता है और स्पष्ट समझमें आ जाता है कि शत्रुओंने किसी विषमयी सामग्रीसे महाराज शिलादित्यके दुर्गके चारों ओरकी खाईंका जल दूषित कर दिया था। फिर जब उन्होंने देखा कि विषसे भरे जलके पीनेसे हमारे सैनिक नष्ट हो रहे हैं तब दुर्गका फाटक खोलकर वे शत्रुओंके सामने आये। ऐसे नीच उपायोंके द्वारा अनेकोंने दूसरोंके राज्यों पर अपना अधिकार किया है। अलाउद्दीनने भी ऐसेही दुष्ट उपायका अवलम्बन कर अजयसिंहका दुर्जय दुर्ग सहजमें जीत लिया था। परन्तु किन आक्रमणकारियोंने बल्लभीपुरका विध्वंस किया, इस विषयमें बहुत मतभेद है। कर्नल टाड साहब तो उन आक्रमणकारियोंको पारथ अथवा हून अनुमान करते हैं परन्तु वाडेनने उनको इन्दुवक्तृय और एलफिन्स्टन्‌ने फारसवासी बताया है। अब यहांपर इसका निर्धारण करना सहज नहीं है कि इन भिन्न भिन्न मतोंमें कौन मत सत्य, विश्वसनीय और ग्रहण करनेके योग्य है। इन मतोंकी समालोचना करनेसे एलफिन्स्टन् साहबकी रायको हम अधिक

समय कामनासिद्धिके सब अभाव देख वह सोलहों उपचारोंसे * भवानीकी पूजा करनेके निमित्त अपने पिताके घर गई थी। पूजन समाप्त करके वह पतिके राज्य को लौट रही थी कि इतनेमें मार्गमें उसने इस नाशकारी घटनाका वृत्तान्त सुना। इतना सुनना था कि मानो उसके शिर पर वज्र टूट पड़ा। इस सम्वादके सुननेसे उसे इतना शोक हुआ कि वहीं मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ी। पुष्पवतीको दु·

माननीय पाते हैं। अपने मतके समर्थनमें उन्होंने जो प्रमाण संग्रह किये हैं वे बहुत कुछ सम्भव जान पड़ते हैं। यहां पर हम उनके प्रमाणोंका सारांश उद्धृत करते हैं। एलफिन्ष्टन् साहब लिखते हैं कि "जिस म्लेच्छ जातिने वल्लभीपुरका विध्वंस किया था उसको कर्नल टाडने पारथ और वाडेनने इन्दुवक्षय अनुमान किया है; परन्तु विशेष विचार करके देखनेसे उसको पारथ नहीं माना जा सकता; उसका फारस की ससनियन जाति होना सम्भव है। नौशेरवांने सन् ५३१ ई० से ५७८ ई० तक राज्य किया था; सर जान मालकमने अनेक फारसी ग्रन्थोंका आधार लेकर लिखा है कि वह अपना विजयी सैन्यदल उत्तर ओर सुदूर फरगना और पूर्वमें भारत-वर्षतक ले आया था। अनेक चीनी ग्रन्थ इसके प्रथम आक्रमणके विषयका समर्थन करते हैं। उधर सर हेनरी पोटिञ्जरने बड़ी सूक्ष्मतासे अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि नौशेरवांने मिकारन उपकूलसे सिन्धुदेशपर आक्रमण किया था। अतः जब वल्लभी सिन्धुदेशके बहुत निकट है तब यह बात सहजमें समझी जा सकती है कि नौशेरवांने ही उसे विध्वस्त किया था।"—

Elphinstone's History of India, P. P. 210, 211.

* नागदेवका वचन है कि आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, उपवीत, चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, प्रदक्षिणा, विसर्जन, ये सोलह उपचार देवताओंके पूजनके हैं। देखिये श्रीविशुद्धानन्दविद्यालय (कलकत्ता) के प्रधानाध्यक्ष पाण्डेय श्रीउमापतिदत्तशर्मा बी०ए०—संग्रहीत "कुसुमाञ्जलि" पृष्ठ ५८— आवाहनासने पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
स्नानं वस्त्रोपवीते च गन्धमाल्यादिभिः क्रमात्॥
धूपं दीपञ्च नैवेद्यं नमस्कारं प्रदक्षिणाम्।
उद्वासनं षोड़शकमेवं देवार्चने विधिः॥

भोग्यने आ घेरा; उसने इतने दिनोंसे जो आशा बांध रखी थी कि वह राजमाता होगी, वह आशा सफल होकर भी नहीं हुई, यह सामान्य दुर्भाग्यकी बात नहीं थी। सहेलियोंकी शुश्रूषासे जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई तब अपने भाग्यको धिक्कार धिक्कार कर वह महाविलाप करने लगी। अपनी आशाके सफल न होनेका उसे उतना दुःख नहीं हुआ; परन्तु जिसके लिये वह जीवित थी, जो उसके जीवनका एकमात्र अवलम्ब था, निष्ठुर कालने उसके उसी प्राणप्रिय स्वामीरत्नको हर लिया; यह दुःख वह किसी प्रकार सहन नहीं कर सकती थी। यदि वह गर्भवती न होती तो उसी समय चिताकी आगमें अपने शरीरकी आहुति देकर पतिका साथ देती; किन्तु करती क्या?— निरुपाय थी। अन्तमें प्रसवकाल तक जीवन रखना निश्चितकर वह मालिया नामक पर्वतमालाके एक गह्वरमें जाकर रहने लगी। वहां यथासमय उसे एक पुत्र जन्मा।

इस मालिया पर्वतश्रेणीसे थोड़ीही दूरपर वीरनगर नामक एक छोटासा गांव था; उस गांवमें कमलावती नाम्नी एक ब्राह्मणी वास करती थी। पुष्पवतीने उसी ब्राह्मणीको अपना बच्चा सौंपकर प्यारे पतिसे (स्वर्गमें) मिलनेकी इच्छासे प्रसन्नता-पूर्वक अग्निमें प्रवेश किया। अग्निमें प्रवेश करनेसे पहले कमलावतीके पांवोंपर गिरकर बड़े विनीत भावसे उसने कहा—"देवि, अपने हृदयसे बढ़कर प्यारे कुमारको तुम्हारे हाथोंमें समर्पण करती हूं। अबसे तुम्हीं इसकी माता हो। देखना— अपने निज पुत्रकी तरह इसका पालन करना; चूकना मत। एक और भी निवेदन तुमसे करती हूं; वह यह कि इसे ब्राह्मणोचित शिक्षा देकर यथासमय किसी राजपूतकन्याके साथ इसका विवाह कर देना।"

प्राणप्यारे पतिकी सेवामें जानेके समय पुष्पवतीने जो अनुनय विनय और प्रार्थना की थी वह अनुनय विनय और प्रार्थना ब्राह्मणी कमलावती भूल नहीं सकी। वह प्रार्थना उसके कानोंको मानो देवाज्ञा जान पड़ी। बालकका उत्तम रूपसे पालन करनेमें उसने कोई त्रुटि नहीं की। एक समय वह स्वयं गर्भकी पीड़ा भोग चुकी थी, इस कारण वह खूब जानती थी कि पुत्ररत्न कैसा प्यारा धन है। राजकुमारका जन्म गुहामें हुआ था इससे उसने उसका नाम "गोह" रखा। वह निज पुत्रकी तरह बड़े यत्नसे गोहका लालनपालन करती, परन्तु उससे उसे कभी

सुख नहीं मिलता, कारण यह कि गोह बड़ा दुष्ट और चञ्चल हो गया था। उमर बढ़नेके साथ साथ उसकी चञ्चलता और दुष्टता भी दिनपर दिन बढ़ती जाती थी। वह कमलावतीके मना करने पर भी अपने बराबरके राजपूत बालकोंके साथ सदैव खेला करता। कभी वह पक्षी पकड़कर मारता, कभी घने बनमें प्रवेशकर वहांके जन्तुओंका आखेट करता। इस प्रकार बढ़ते बढ़ते उसकी उमर ग्यारह वर्षकी हुई। उस समय उसकी चञ्चलता और दुष्टता इतनी बढ़ गई कि उसे कमलावती किसी प्रकार नहीं रोक सकती थी। इस विषयको लेकर भट्टकवियोंने लिखा है कि—"भला वह कैसे रोक सकती?, सूर्यके तेजको क्या कोई मनुष्य किसी वस्तुकी आड़में छिपा सकता है?"

मेवाड़के दक्षिण ओर पर्वतमालाओंमें ईडर नामक एक राज्य है; उस समय माण्डलिक नामा एक भील राजा इस राज्यके सिंहासन पर आरूढ़ था। गोह ईडरके उन्हीं भीलोंके साथ दिन रात बन बन घूमा करता था। वह बहुत उद्धत हो गया था, इसीसे ब्राह्मणोंका साथ और शान्तभाव छोड़कर वह सदैव भील लोगोंके साथ वास करना अधिक पसन्द करता था। वे भी इससे बहुत प्रेम करते थे। धीरे धीरे उन सभोंका प्रेम इतना बढ़ा कि उन्होंने एक दिन ईडरका पहाड़ी राज्य एकदम "गोह को सौंप दिया। अबुलफजल और भट्टोंने इस विषयको इस रूपमें वर्णन किया है कि राजपूतबालक गोहके साथ एक दिन भीलोंके बालक आनन्दपूर्वक खेल रहे थे, इतनेमें उन सभोंने परस्परमेंसे किसीको राजा बनानेका विचार किया। जितने बालक वहां उपस्थित थे सबने एक मतसे गोहको राजा बनानेकी इच्छा प्रकट की। इस सम्मतिके अनुसार एक भीलबालकने उसी समय अपने एक हाथकी उंगली काटकर उसके रक्तसे इस नवीन राजाके ललाट पर राजतिलक लगा दिया। उस दिन उस घने बनके बीच खेलमें अबोध भील बालकोंने गोहके ललाटपर जो राजचिह्न अङ्कित किया उसे कोई मिटा नहीं सका। वृद्ध भीलराज माण्डलिकने यह सब वृत्तान्त सुनकर बड़ी प्रसन्नतासे गोहको राज्यका भार सौंप दिया और स्वयं वृद्ध होनेके कारण राजकार्यसे अवसर ग्रहण किया; परन्तु इस राज्याभिषेकका अन्तिम परिणाम बहुत बुरा हुआ; उससे गोहके चरित्रमें कृतघ्नता और विश्वासघातकताका दोष लग गया। कहते हैं कि जिस भीलराज

माण्डलिकने अपने पुत्रोंके रहते भी अपनीही इच्छा और प्रसन्नतासे गोहको राज्य-कार्य सौंपा. गोहने उसी माण्डलिकके प्राणोंका संहार कर डाला! यह नहीं ज्ञात होता कि किस अभिप्रायसे अथवा क्या सोचकर राजपूतकुमार गोहने ऐसा दूषित कार्य किया। अबुलफजल और भट्टोंने अपने ग्रन्थोंमें इसका कोई कारण प्रकट नहीं किया है। गोहका नाम उसके वंशधरोंके प्रधान गोत्रके नामके स्थानमें व्यवहारमें लाया जाने लगा। उस समयसे वे गोहिलोट वा गिह्लोट कहे जाने लगे।

इन प्राचीन नृपतियोंकी सच्ची जीवनीके सम्बन्धमें बहुत थोड़ा विवरण मिलता है। जो मिलता है उससे इतनाही पता चलता है कि गोहकी आठवीं पीढ़ीतकके राजे उसी पहाड़ी ईडरराज्यके सिंहासन पर आरूढ़ थे। इतने दिनोंतक भीलगण राजपूतोंके हाथोंमें अपना स्वाधीनतारूपी रत्न सौंपे हुए सुख दुःखमें किसी प्रकार पराधीनताका जीवन बिता रहे थे। परन्तु भील सदा स्वाधीनताप्रिय होते हैं, स्वाधीनताही उनकी एकमात्र इच्छा होती है; उनके पूर्वपुरुष आनन्दसे स्वाधीनताका सुख भोग चुके थे, अतः वे सोचते थे कि हम क्यों स्वाधीनतासे वञ्चित रहें। निदान वे अधिक पराधीनता नहीं सहन कर सके। गोहकी आठवीं पीढ़ीमें नागादित्य नामक एक राजा ईडरराज्यके सिंहासन पर आरूढ़ था। एक दिन वह आखेट करते करते एक मृगके पीछे जा रहा था कि इतनेमें भीलोंने बड़ी प्रचण्डतासे उस पर आक्रमण करके उसी जगह उसे मार डाला और ईडरराज्यपर पुनः अपना अधिकार कर लिया।

जिस दिन हतभाग्य नागादित्य भीलोंके द्वारा मारा गया उस दिन उसके परिवारमें घोर हाहाकार मच गया।—सभी भयभीत हुए। चारों ओर भील थे; भागनेका कहीं मार्ग नहीं था। भला कौन उन क्रोधमें भरे हुए भीलोंसे उनकी रक्षा करता? तो क्या नागादित्यका वंश निर्मूल हो जायगा?—ऐसीही अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करके राजपूतगण बहुत व्याकुल हुए। नागादित्यका बप्पा नामक एक तीन वर्षकी उमरका पुत्र था; उसीकी उनको बहुत चिन्ता थी। परन्तु भगवान्‌ने अनाथ राजपूतकुमार बप्पाकी रक्षा की; बहुत शीघ्र वह निस्सहाय बालक सहायसम्पन्न हुआ। जिस वीरनगरनिवासिनी कमलावतीने अनाथ गोहका लालनपालन किया था उसीके वंशधरोंने इस संकटके समय महाराज शिलादित्यके

वंशको विनष्ट होनेसे इस बार पुन: बचा लिया। चाहे कैसीही विपद्का सामना करना पड़े परन्तु उन्होंने बप्पाके प्राणोंकी रक्षा करनेका दृढ़ निश्चय किया। वे गिल्होटराजपरिवारके कुलपुरोहित थे; आज पुरोहित नाम सार्थक करनेके लिये उन्होंने अपनेको विपत्तिमें फंसाकर भी राजपुत्र बप्पाकी रक्षा करनेका पक्का सङ्कल्प किया। नागादित्यके बालक कुमारको लेकर ब्राह्मणगण भाण्डेर † दुर्गमें चले गये; वहां यदुवंशके एक भीलने उनको आश्रय दिया। परन्तु उस स्थानको एकदम निरापद् न समझकर ब्राह्मणगण बप्पाको पराशर नामक बृहत् वनमें ले गये। वह स्थान बड़े बड़े जङ्गली वृक्षोंसे ढँका हुआ था। उन ऊँचे ऊँचे वृक्षोंके शाखापल्लवोंको भेदकर त्रिकूट पर्वत अपना मस्तक उन्नत किये खड़ा था। पर्वतके नीचे नगेन्द्र ‡ नामक एक छोटासा नगर था। शिवकी उपासना करनेवाले शान्तिप्रिय ब्राह्मण बड़े सुखसे उस नगरमें रहते थे। बप्पा उन्ही शान्तिशील द्विजोंको सौंपा गया। उसी घने शान्तिमय वनमें पर्वतके नीचे विप्रोंके द्वारा सुरक्षित होकर वह आनन्दपूर्वक रहने लगा।

उस पराशर नामक घने वनमें, उसके भीतर त्रिकूट पर्वतके अन्धकारमय गह्वरोंमें, मेघोंसे शोभित उसके ऊँचे शिखरों तथा सुन्दर झरनोंके उत्पत्तिस्थानोंमें,— अनेक प्राचीन देवमन्दिर देख पड़ते हैं। प्रकृतिका मधुर हास्य गम्भीर शान्तरससे मिलकर एक ऐसा अनिर्वचनीय भाव उत्पन्न करता है कि उस निर्जन स्थानमें जातेही मनमें भक्ति भय और आनन्द तीनों एकसाथही उत्पन्न होते हैं। इस पवित्र वनके लोग बहुत प्राचीनकालमें केवल महादेवजीकी पूजा करते थे। यहांतक कि नासमझ भील भी उनकी प्रतिमूर्त्ति (भुजङ्गमें लिपटे हुए शिवलिङ्ग) और उनके वाहन बैलको बहुत पवित्र मानकर भक्तिपूर्वक पूजते थे।

उस शान्तिमय गम्भीर वनमें भूतभावन भगवान् महादेवकी पूजाविधि बहुत दिनोंतक विशेष प्रचलित थी। यद्यपि आज मेवाड़राज्यकी वर्त्तमान गिरी हुई अवस्थामें उस पूजनका आडम्बर बहुत घट गया है, तथापि शिवरात्रि आदि प्र

† यह स्थान जरोलीसे १५ मील दक्षिण पश्चिमकी ओर है।

‡ यह उदयपुरसे १० मील उत्तर ओर है और अब भी एक तीर्थस्थान माना जाता है। टाड साहबने यहां पर गिल्होटकुलसम्बन्धी अनेक शिलालेख पाये थे।

सिद्ध उत्सवों पर उदयपुरमें शिवकी उपासना विशेषताके साथ देख पड़ती है; यहां तक कि भिन्न धर्म्मावलम्बी जैन और वैष्णव भी इन उत्सवोंमें आनन्दपूर्वक सम्मिलित होते हैं और मेवाड़के राणागण आज भी अपनेको "एकलिङ्गका दीवान" कहा करते हैं। यदि गङ्गा और यमुनाके तीरके देशोंमें अनेक देवदेवियोंकी उपासना प्रचलित न हो जाती, तो कदाचित् शिवपूजन अबतक पहलेकी भांति पूर्ण प्रतापसे होता रहता। उदयपुर जाते समय मार्गमें एक सङ्कीर्ण पहाड़ी पथके ऊपर एकलिङ्गका पवित्र मन्दिर दिखाई देता है। मन्दिर बहुत बड़ा है। यद्यपि वह अत्यन्त मनोहारी नहीं है तथापि देखने योग्य है। सिरसे पैरतक वह मर्मर पत्थरका बना है और उसके भीतरी भागमें बहुत नक्काशी की हुई है। इस मन्दिरके देखनेसे अनुमान होता है कि इसके बनवानेमें बहुत रुपये व्यय हुए होंगे। दुःखका विषय है कि मार्गमें होनेके कारण हिन्दूविद्वेषी म्लेच्छोंने इसको कई स्थानोंसे तोड़फोड़ डाला है। इस देवालयके सामने एक छायादार आंगन है; आंगनमें वेदिका और उस वेदिकापर एकलिङ्गके ठीक सामने किसी धातुकी बनी बैलकी बैठी हुई एक मूर्त्ति है। यह मूर्त्ति भीतरसे खोखली है और बहुत सुन्दर तथा सुडौल बनी है; परन्तु लालची तातारियोंने धनके लोभसे हथौड़े मार मार कर उसमें कई जगह दरार बना दी है।

अन्यान्य कुलोंकी प्रतिष्ठा करनेवालोंकी भांति बप्पाकी बाल्यावस्थाके सम्बन्धमें भी बड़ी अपूर्व अपूर्व बातें सुन पड़ती हैं। जिन ब्राह्मणोंको वह सौंपा गया था उनके गौओंको वह चराया करता था और बड़े आनन्दसे उनको चराता हुआ घूमा करता था। सूर्य्यवंशी महाराज शिलादित्यका वंशधर निकृष्ट चरवाहेका कार्य्य करता था; परन्तु कोई यह नहीं जानता या सोचता था कि भविष्यमें क्या होनेवाला है। बप्पाके इस शान्तिमय बाल्यजीवनकी घटनाके आधारपर भट्टोंने अनेक सुन्दर और हृदयग्राही किस्से गढ़ डाले हैं। - शारदीय झूलनके उत्सवपर राजपूतगण खूब आनन्द मनाते हैं। इस उत्सवके समय बालकबालिकासमूह बड़े आनन्दसे झूलनलीला करते हैं। कहा जाता है कि नगेन्द्रनगर इस समय सोलङ्कीवंशी किसी राजाके अधीन था। उत्सवके दिन राजाकी कन्या अपनी सहेलियों तथा नगरकी दूसरी कुमारियोंके सहित झूलनके लिये कुञ्जोंमें गई थी; परन्तु

डालमें बांधनेको डोरी नहीं थी अतः वे सब इधर उधर घूम घूमकर देख रही थीं कि कहीं डोरी मिल जाय तो काम चले। इतनेमें बप्पा उसी स्थानमें आ पहुंचा। उसे देखतेही राजपूतबालिकाएँ उससे कहींसे रस्सी ला देनेकी प्रार्थना करने लगीं; परन्तु बप्पा चञ्चल और हँसोड़ था, उन कुमारियोंसे ठिठोली करनेके अभिप्रायसे उसने हँसते हँसते कहा कि "यदि तुम पहले मुझसे विवाह कर लो तो मैं अभी रस्सी ला दूं।" इस कौतुक पर और भी कौतुक हुआ;—आनन्दमयी खिलवाड़िन राजपूतबालिकाएँ बालक बप्पाके साथ विवाह करनेको उद्यत हो गईं। उसी समय यह खिलवाड़का विवाहकार्य हो भी गया। सोलङ्कीराजकन्याका आंचल और बप्पाके वस्त्रका एक कोना एकसाथ बांध दिया गया और सब बालिकाएँ एक दूसरेका हाथ पकड़े हुए इन दोनोंके साथ जाकर एक बड़े ऊँचे वृक्ष-की प्रदक्षिणा कर आईं। बप्पाको बिलकुल ध्यान नहीं था कि आज इस शारदीय शुभ झूलनके अवसर पर पेड़के नीचे खिलवाड़में जो विवाह हो गया वह बहुत शीघ्र वास्तविक विवाह हो जायगा। इसी घटनासे उसका सौभाग्य आरम्भ हुआ; परन्तु नगेन्द्रनगरमें वह अधिक कालतक नहीं ठहर सका, उसको तुरन्तही वहांसे चला जाना पड़ा। उस दिनसे उसका भाग्य खुला इसमें सन्देह नहीं, परन्तु वे सभी बालिकाएँ उसके गलेका हार बन गईं। उन बालिकाओंके वंशधरगण आज भी उस खेलके विवाहका वृत्तान्त कहकर अपनेको बप्पाके कुलमें उत्पन्न बतलाते हैं।

खेल समाप्त हुआ;—घर जातेही राजपूतबालिकाएँ सब बातें भूल गईं। विधाता भीतरही भीतर बप्पाके साथ उनको भवितव्यताको एक गूढ़ बन्धनसे बांध देगा इसका उनको स्वप्नमें भी ध्यान नहीं था। कुछ दिन बीतने पर सोलङ्की-राजकुमारी बड़ी और विवाहके योग्य हुई। उसके पिताने वर स्थिर करके विवाहकी तैयारी आरम्भ की। इतनेमें एक दिन वरकी ओरके एक सामुद्रिक ब्राह्मणने आ और राजकन्याका हाथ देखकर कहा—"इसका विवाह तो हो चुका है।" यह आश्चर्यमय वाक्य सुनतेही राजमहलके लोगोंमें बड़ी व्यग्रता फैली, सभी उस गुप्त पुरुषको ढूंढ़ निकालनेके लिये व्यस्त हुए जिसने चुपचाप राजकुमारीके साथ विवाह कर लिया था। बहुत शीघ्र चारों ओर जासूस भेजे गये। धीरे धीरे बप्पाके भी कानोंतक यह बात पहुँची। उसने सोचा कि यदि बात खुल जायगी तो मुझे

बड़ी विपद्में पड़ना पड़ेगा, अतः अपने साथी चरवाहोंसे उसने कह दिया कि देखो यह बात किसी प्रकार प्रकट न होने पावे। उन चरवाहोंको बप्पा पर बड़ी भक्ति थी और वे इसको बहुत मानते थे, इसलिये इस बातके प्रकाशित हो जाने की कोई सम्भावना नहीं थी; तौभी बप्पाने नीचे लिखे अनुसार उनको एक कठोर अङ्गीकारजालमें आबद्ध किया। एक कुवां खोद और हाथमें एक पत्थरका टुकड़ा लेकर उसने उनसे कहा—"कसम खाओ कि सुख दुःखमें अथवा सम्पद् विपद्में कभी मेरा साथ नहीं छोड़ोगे। चाहे प्राण जानेका भय हो तब भी मेरी कोई बात किसीसे नहीं कहोगे। बोलो, बोलो—कसम खाओ। यदि चुप रहोगे तो समझ रखो कि तुम्हारे पूर्वपुरुषोंके सब सत्कर्म इस पत्थरके टुकड़ेकी भांति रजककूपमें जा पड़ेंगे * ।" यह कहते हुए उसने वह पत्थरका टुकड़ा कुवेंमें डाल दिया। इसपर उसी समय उसके साथियोंने एकमत होकर कसम खाई और फिर कभी उन्होंने इस शपथको नहीं तोड़ा। परन्तु जिस गूढ़ घटनासूत्रमें छःसौ राजपूत-बालाओंका भाग्य बँधा था वह कबतक अप्रकाशित रहता?—थोड़े दिनोंमें सोलङ्कीनरेशको सब हाल मालूम हो गया। उनको पता लग गया कि बप्पा ही इस गूढ़ विवाहका कर्त्ता है।

इधर बप्पाके विश्वासी साथियोंने यह सुनकर कि सोलङ्कीनरेशको सब वृत्तान्त विदित हो गया है चुपचाप जाकर यह बात बप्पासे कही। यह सुनतेही वह उस जगहको छोड़ उसी पर्वतके एक अत्यन्त गुप्त स्थानमें आ बसा। वह स्थान एक-दम निर्जन था। यह निर्जन स्थान अनेक बार उसके वंशधरोंका आश्रयस्थल रह चुका है। भागते समय बालीय और देव नामक दो भील उसके साथ थे। पहला उन्द्रीका रहनेवाला था और दूसरा अगुणापानोरका। इन दो भील युवकोंने सुख दुःख और कठिनसे कठिन विपद् पड़नेपर भी एक क्षणके लिये बप्पाका साथ नहीं छोड़ा। वे सदैव छायाकी भांति उसके साथ रहे। भगवान्की कृपासे जिस समय बप्पाने चित्तौड़का राजासन प्राप्त किया उस समय अपना रक्त निकाल कर उन्होंने उसके ललाट पर राजतिलक लगाया।

* राजपूतलोग रजककूपको बहुतही अपवित्र समझते और उससे घृणा करते हैं। टाड साहब कहते हैं कि ये कूप प्रायः नदियोंके तटोंपर खोदे जाते हैं।

बालीय और देवकी उत्पत्ति असभ्य भीलकुलमें हुई थी, परन्तु उनके हृदयमें जो पवित्र भाव भरा था वह कितने सुसभ्य और ज्ञानवान् पुरुषोंके हृदयमें वर्त्तमान है?– वे जो पवित्र चरित्र संसारमें छोड़ गये हैं वैसा चरित्र इस समय कितने लोग दिखा सकते हैं? उन्होंने जिस बातकी प्रतिज्ञा की थी उसका पालन करनेमें वे अकृतकार्य्य नहीं हुए। प्रतिज्ञापालनके अनुरोधसे उन्होंने अपने भाईबन्धु, शारीरिक सुख स्वतन्त्रतादि छोड़कर बप्पाके साथ घोर वनमें रहना स्वीकार किया। कितनोंही बार वे विपत्तियोंमें पड़े, कितने अवसरों पर उनको बिना खाये बिना सोये दिन बिता देना पड़ा, तौभी एक क्षणके वास्ते भी उन्होंने अपना अङ्गीकृतव्रत नहीं तोड़ा; एक दिन भी बप्पाकी आज्ञासे वे विमुख नहीं हुए। वास्तवमें वे बप्पा के जीवनसहचर और उसके सुख दुःखके समभागी थे। बप्पा यदि ऐसे बन्धु न पाता तो कौन कह सकता है कि उसके भाग्यकी क्या दशा होती? कदाचित् वह उस अज्ञातवाससे निकलकर चित्तौड़का राजसिंहासन न प्राप्त करता और उसका नाम आज वीरकुलके आदर्शस्वरूप न होता। बप्पाके साथ उन दोनों भील मित्रोंने जो उपकार किये उन उपकारोंको वह कभी नहीं भूला। उनके साथ रहनेमें वह अपनेको सुखी और सम्मानित मानता• और अनेक प्रकारसे उनके आगे कृतज्ञता प्रकाश करता। आज भी उस पवित्र कृतज्ञताका चिन्ह मेवाड़में उसी भांति वर्त्तमान है। जिस दिन वीरकेशरी बप्पाने उन दोनों भीलबन्धुओंके साथ खूब आनन्द मनाया था वह दिन कालसमुद्रमें डूबकर एकबारही विलीन हो गया है; जिस चित्तौड़के स्वर्णसिंहासनपर बैठकर उसने पवित्र हृदयसे उन भीलों का दिया हुआ राजतिलक ग्रहण किया था वह चित्तौड़ आज भग्न और चूर्णविचूर्णित अवस्थामें दिखाई देता है; एक दिन जो भूमि जगन्मान्य वीर राजपूतोंकी लीलाभूमि थी वही आज जङ्गली गीदड़ोंको निवासस्थान हो रही है,—तौभी, कालचक्रके असंख्य बार पलटे खाने पर भी बप्पाके वंशज अभिषेकके समय अब तक बालीय तथा देवके वंशधरोंका दिया हुआ राजतिलक आनन्दके साथ ग्रहण करते और इससे अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं †।

† देवका वंशधर नये राजाका हाथ पकड़कर उसे राजासनपर बिठाता है और बालीयका वंशज हाथमें दहीका पात्र और पिसा हुआ चावल लिये खड़ा

समय भारतवर्षमें केवल अगुणापानोरके रहनेवाले एक प्रकार सच्ची प्राकृतिक स्वतन्त्रताका उपभोग कर सकते हैं। यहांके निवासी किसी राज्यके अधीन नहीं होते, न किसी राजासे किसी प्रकारका सम्बन्ध रखते हैं। इनका अधिपति "राणा" उपाधि धारण कर सहस्रों जङ्गली गांवोंका अधिकारी रहता है और काम पड़ने पर कमसे कम पांच सहस्र धनुष्मान् भीलवीरोंका सरदार बनकर युद्धस्थलमें उपस्थित हो सकता है। सोलङ्कीराजपूतरमणीके गर्भ और भूमिया भीलके वीर्यसे इन भीलोंके पूर्वपुरुष उत्पन्न हुए थे; इसीसे ये अपनेको राजपूत कहते हैं। अगुणाके इसी कुलमें महात्मा देवका जन्म हुआ था। आवश्यकता समझकर हम प्रकृत विषयसे इतनी दूर चले आये थे, अब पुनः बप्पाका हाल लिखते हैं।

विचार करनेसे बप्पाका इस प्रकार भागना और उसके भागनेके कारण इत्यादि स्वाभाविक और सुसङ्गत जान पड़ते हैं; परन्तु भट्टोंके काव्यग्रन्थोंमें यही बात दूसरे रूपमें लिखी देख पड़ती है। उन्होंने इतना और बढ़ाकर लिखा है कि उसे देवाज्ञासे नगेन्द्रनगर छोड़कर दूसरी जगह भागना पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि जगत्के सब प्राचीन वंशों और सब देशों तथा सब जातियोंके महापुरुषोंका विवरण अनेक प्रकारकी काल्पनिक बातोंसे भरा हुआ है, परन्तु जो बप्पा वीरचरित आर्यनृपतियोंका चिह्नपुरुष था, जो देवताकी भांति पूजा जाता था, जो अपनी वीरताके कारण शत्रुओंके हृदयमें भय उत्पन्न करता था, जो इस संसारसे विदा हो जाने पर भी अबतक "चिरञ्जीव' कहा जाता है,– उस वीर राजपूत-तिलक बप्पाकी जीवनी और उसके अभ्युदयका वृत्तान्त भी क्या वैसीही कल्पनाओंके अन्धकारमें पड़ा रहेगा? दुःखकी बात है कि भट्टोंने बप्पाका उन्नतिवृत्तान्त जिन अलङ्कारोंसे अलङ्कृत कर रखा है उनपर मेवाड़वासियोंका इतना अधिक अनुराग है कि उन अलङ्कारोंके हटानेसे उनकी समझमें देवताका अपमान करने का पाप लगता है! भट्टकवियोंका कथन है कि राजपूतबालक बप्पा चरवाहेके वेषमें नगेन्द्रनगरके आसपास अपने प्रतिपालक ब्राह्मणोंकी गौएँ चराया करता था।

रहता है। पहले मेवाड़की उन्नत अवस्थामें अभिषेकके समय प्रायः एक वर्षकी आमदनी खर्च कर दी जाती थी। राणा जगत्सिंहके अभिषेकके बादसे यह प्रथा बहुत घट गई है।

यह काम वह बड़े सुखसे करता था, परन्तु इसमें भी अशान्ति आ पड़ी। वह जिन गौओंको चराता था उनमें एक बहुत दूध देनेवाली गाय थी। आश्चर्यका विषय है कि कुछ दिनके बाद यह दशा हुई कि जब वह गौ घूमघामकर सन्ध्याके समय अपने आश्रमको आती तब उसके स्तनसे कुछ भी दूध न निकलता; इससे उन विप्रोंके मनमें सन्देह उत्पन्न हुआ कि बप्पा अकेलेमें इस गायका सब दूध पी जाता है। उनका यह सन्देह धीरे धीरे बढ़ने लगा और वे बप्पाके प्रत्येक कार्य पर बहुत सावधानीसे दृष्टि रखने लगे। बप्पा भी यह बात समझ गया और इससे उसके मनमें बहुत दुःख हुआ,—पर वह करता क्या? जबतक उनका सन्देह वह नहीं मिटा सकता था तबतकके लिये उसे बहुत दुःख हुआ था; परन्तु तबसे उसने उस गाय पर विशेष दृष्टि रखनेका निश्चय किया। दूसरे दिन जब वह सब गौओंको लेकर चरानेको निकला तब औरोंको छोड़ उसी गायके पीछे पीछे घूमने लगा। वह जिस ओर जाती उधरही वह भी जाता। इतनेमें वह गौ एक पर्वतकन्दरामें घुसी; बप्पाने भी उसके साथही उस कन्दरामें प्रवेश किया। अकस्मात् एक अद्भुत दृश्य उसे दिखाई दिया! उसने देखा कि वह गाय एक घने लतागुल्मपर बराबर दूधकी धारा छोड़ रही है! बप्पा विस्मित हुआ। जब वह उस घनी लताके निकट गया तब क्या देखता है कि वहां एक शिवलिङ्ग स्थापित है और उसी लिङ्गपर वह गाय सुधामय क्षीरकी अविरल धारा गिरा रही है। अब बप्पा उसके दुग्धके क्षय हो जानेका कारण समझ गया। शिवलिङ्गके सामने उसने एक और भी विचित्र दृश्य देखा; वह यह कि वहां गेरुआ वस्त्र पहने एक ध्यानमग्न योगी बैठा था। उस निर्जन स्थानमें बप्पाके जानेसे योगीवरका ध्यान भङ्ग हो गया; परन्तु इसके लिये उन्होंने उसको कुछ कहा नहीं।

यह गिरिकन्दरा एकदम निर्जन थी और उसके अन्दर बड़ी शान्ति विराज रही थी। प्राचीन योगियों और तपस्वियोंके अतिरिक्त कभी किसीने यह पवित्र स्थान नहीं देखा था। बप्पाका बड़ा पुण्य था कि वह बिना चेष्टा और यत्नके उस पवित्र स्थानतक पहुँच सका। उन योगीवरका नाम हारीत था। वेही उस गाभी की दुग्धधारा प्राप्त करते थे *।

* इसी स्थानमें एकलिङ्ग देवका पवित्र मन्दिर है। टाड साहबके समयमें इस

हारोतका ध्यान भङ्ग होतेही बप्पाने उनके पैरोंपर गिरकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। हारीतने उसे आशीर्वाद देकर उससे उसका परिचय पूछा। बप्पाको अपने सम्बन्धमें जो कुछ मालूम था सब उसने निष्कपट भावसे कह दिया इसके पश्चात् वह उस दिन गौओंको साथ लेकर अपने आश्रमको चला आया। फिर उसदिनसे वह प्रतिदिन योगीके निकट आने लगा। वहां जाकर वह प्रतिदिन बड़ी भक्तिसे उनके पांव धोता, उनके पीनेको दूध देता, शिवपूजाके निमित्त पवित्र फूल वनमेंसे तोड़ लाता और उसकी अकपट भक्तिसे प्रसन्न होकर मुनिवर हारीत भी उसे अनेक प्रकारकी नीतिशिक्षा देते। इसी प्रकार कुछ दिन बीत गये। क्रमशः महात्मा हारीत उससे इतने सन्तुष्ट हुए कि उसे शैवमन्त्रसे दीक्षित कर उन्होंने अपने हाथोंसे उसके गलेमें पवित्र यज्ञोपवीत पहनाया और "एकलिङ्गके दीवान" की उपाधि दी। बप्पाकी सच्ची भक्ति और प्रगाढ़ शिवपूजाको देख भगवती भवानी भी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। आशीर्वाद देनेके लिये सिंहासन पर चढ़कर वे स्वयं उसके सम्मुख आईं और वहां आकर उन्होंने विश्वकर्म्माकृत शूल, कमान, तीर, ढाल और एक बहुत बड़ा खड्ग उसे दिया। इस प्रकार भगवान् भूतनाथका पवित्र मन्त्र सीख और भगवती भवानीसे ऐसे अस्त्र पाकर बप्पा ऐसा हो गया कि उसे कोई शत्रु जीत नहीं सकता था। उस समय उसके गुरु हारीतने उसे छोड़कर शिवलोकको जाने की इच्छा प्रकट की। जिस दिन वे स्वर्गमें जानेको थे उस दिन उन्होंने बहुत तड़के उसे अपने यहां बुलाया; परन्तु उस दिन बहुत सो जानेके कारण वह ठीक समय पर मुनिके निकट नहीं पहुँच सका। जब कुछ देरके बाद वह जागा तब दौड़ता हुआ उक्त कन्दरा की ओर चला। वहां जाकर वह क्या देखता है कि योगिवर हारीत एक रथपर (जिसे अप्सराएँ लिये हुई हैं) चढ़े आकाशकी ओर जा रहे हैं। ऋषिने अपने प्रिय शिष्यके प्रति अन्तिम अनुराग प्रकट करनेके अभिप्रायसे रथकी गति रोक दी और आशीर्वाद देनेके लिये उसे ऊपर उठनेको कहा। देखतेही देखते बप्पाका शरीर अकस्मात् बीस हाथ † बढ़ गया, परन्तु

मन्दिरका जो पुजारी था वह महर्षि हारीतसे छठा था। टाड साहब जब इस मन्दिरको देखने गये थे तब उसने इनको शिवपुराणकी एक प्रति भेट की थी।

† बप्पाके सम्बन्धमें ऐसीही अनेक अद्भुत बातें सुन पड़ती हैं। कहा जाता है

इतने पर भी वह हारीत तक नहीं पहुँच सका। तब मुनिने उसे अपना मुख खोलनेको कहा। बप्पाने वैसाही किया, इसपर उन्होंने उसके मुखमें ऊपरसे थूका। परन्तु बप्पाने घृणासे मुख नीचा कर लिया; इससे थूक उसके पैरोंपर आ पड़ा। कहा जाता है कि यदि बप्पा अपने गुरुके प्रसादको इस प्रकार अप्रतिष्ठा न करता तो अमर हो जाता! तथापि इतनेसे भी उसका शरीर ऐसा हो गया कि उसपर कोई अस्त्र असर नहीं कर सकता था। यह भी थोड़ी बात नहीं थी। इधर हारीत मुनि आकाशमें अन्तर्धान हो गये।

जिस दिन मुनिवर हारीत इस संसारसे विदा हुए उस दिनसे बप्पाके भाग्यचक्रने पलटा खाया। बप्पाने अपनी मातासे अपने विषयमें सुना था कि वह चित्तौड़के वर्त्तमान महाराजका भाञ्जा है। इस निकट सम्बन्धका हाल जानकर वह बहुत उत्साहित हुआ और चरवाहेकी भांति जीवन बिताना उसे कष्टकर जान पड़ने लगा। कुछ साथियोंको लेकर वह उस घने अरण्यसे निकलकर वहां आया जहां मनुष्योंकी बस्ती थी। आज पहलेही पहल बहुतसे मनुष्योंको एकसाथ देखनेका अवसर उसे प्राप्त हुआ। वह अबतक नहीं जानता था कि मनुष्योंसे भरा स्थान कैसा होता है। यहां आकर वह और भी उत्तेजित हुआ। यदि भाग्यदेवता प्रसन्न हों तो मनुष्यको सभी कार्यमें सफलता प्राप्त हो सकती है। उस एकान्त बनसे निकलने पर मार्गमें नाहरामगराके † नीचे प्रसिद्ध गुरु गोरखनाथ उसे मिले। उन्होंने उसे एक दुधारा खड्ग दिया। मन्त्रसे पवित्र कर लेने पर इस प्रचण्ड खड्गकी सहायतासे बिना परिश्रम पर्वत भी काटा जा सकता था। बप्पाका भाग्यरूपी मार्ग पहलेही निष्कण्टक हो चुका था; उसमें जो कुछ सफाई बाकी थी वह इस खड्गके मिलनेसे हो गई ‡।

इस समय चित्तौड़के सिंहासनके अधिकारी प्रमारकुलके मौर्यवंशी नृपति थे। वेही इस कालमें भारतवर्षमें सबसे बड़े अधिपति थे। जिस समय बप्पा चित्तौड़में

कि उसके पहननेका वस्त्र कुछ कम पचास हाथ लम्बा था और भगवती भवानीने उसे जो खड्ग दिया था वह तौलमें प्राय: बत्तीस सेर था।

† नाहरामुगरा (अर्थात् व्याघ्रपर्वत) उदयपुरके पूर्व ओर ७ मीलके अन्तरपर है।

‡ राणाजी अब भी प्रतिवर्ष बड़ी भक्तिसे इस खड्गकी पूजा करते हैं।

पहुँचा उस समय मान नामक एक मौर्यवंशी राजा वहां राज्य करता था। इस राजाने अपने अभ्यागत भाञ्जेका बड़ा आदर किया और अपने अधीनस्थ सामन्तोंकी मण्डलीमें सम्मिलित कर उसे कुछ भूमि दी। मानसिंहके शासनके सम्बन्धमें जो शिलालेख आविष्कृत हुए हैं उनके देखनेसे प्रतीत होता है कि राजस्थानमें उससमय सामन्तप्रथा बहुत प्रचलित थी। राजपूत सामन्तगण मान राजासे भूमि पाते और इसके बदलेमें काम पड़नेपर युद्धक्षेत्रमें उपस्थित होते थे। अबतक महाराज मानसिंह सामन्तोंको बहुत चाहते थे, परन्तु जिस दिनसे बप्पापर उनकी दृष्टि पड़ी उस दिनसे वे सब (अर्थात् सामन्त) उनकी दृष्टिसे एक प्रकार गिर गये। सामन्तगण भी समझ गये कि बप्पाही इस अनर्थका कारण है, अतः वे उससे बहुत बुरा मानने और उसकी कुछ हानि करनेकी चिन्तामें रहने लगे।

इसी समय एक विदेशी शत्रुने आकर चित्तौड़पर आक्रमण किया और राजा मानसिंहने अपने सामन्तोंको शत्रुओंसे युद्ध करनेकी आज्ञा दी। परन्तु उन सभोंने महाराजकी दी हुई जमींदारीका पट्टा दूर फेंककर अहङ्कारपूर्वक कहा कि 'महाराज अपने उस सेनापतिको युद्धक्षेत्रमें भेजें जो सबसे अधिक प्यारा हो।" बप्पाने यह बात अपने कानोंसे सुनी,' परन्तु इससे वह कुछ भी शङ्कित वा हतसाहस नहीं हुआ, वरन् दूने साहससे उत्साहित होकर अकेले शत्रुओंसे लड़नेको चला। इससे पूर्वही दूसर सामन्तोंने अपनी अपनी भूमिका पट्टा लौटा दिया था; परन्तु नाम हँसाईके भयसे लाचार होकर अन्तमें उनको भी बप्पाका साथ देना पड़ा। बप्पाकी वीरताके आगे शत्रु नहीं ठहर सके, नगर छोड़कर इधर उधर भाग गये। विजय पाकर वह चित्तौड़को नहीं लौटा, किन्तु अपने पूर्वपुरुषोंकी राजधानी गयनीको चला गया। गयनी नगर उस समय किसी मुसलमान नृपतिके अधिकारमें था; उस अधिकारीका नाम सलीम था। बप्पाने सलीमको सिंहासनसे उतारकर उसके स्थानमें सौरकुलका एक सामन्त बैठाया और फिर सेना लेकर वह चित्तौड़को लौट आया। कहा जाता है कि इस अवसर पर उसने अपने शत्रु सलीमकी कन्याके साथ विवाह भी किया।

क्रोधमें आये हुए सरदार, राजा मानसिंहसे बहुत रुष्ट हो, उसे छोड़कर चित्तौड़से किसी दूसरी जगह चले गये थे; इस बातसे राजाको बहुत दुःख हुआ।

उसने उनको लौटा लानेके लिये कई बार दूत भेजे, परन्तु दूतोंसे कुछ नहीं हुआ, सामन्तोंने एक न सुनी और किसी प्रकार उनका द्वेष कम नहीं हुआ। यहांतक कि, अपने गुरुका कहना भी उन्होंने नहीं माना। अन्तिम बार जो दूत उनके निकट गया था उससे उन्होंने कहा—"हमलोगोंने महाराजका नमक खाया है इस कारण एक वर्षतक हम उनसे कुछ बदला नहीं लेंगे।" इसके पश्चात् वे अपने लिये एक सरदार ढूंढ़ने लगे। जो बप्पा उनके रुष्ट होनेका प्रधान कारण था अन्तमें उसी को उसके वीरतादि गुणों पर मुग्ध होकर उन्होंने अपना सरदार बनाया। राज्यलिप्सा बड़ी भयङ्कर वस्तु है! इसकी मोहिनी मायामें पड़कर मनुष्य भले बुरेकी पहचान एकदम भूल जाता है, धर्मज्ञान छोड़ देता है और कृतज्ञताके पवित्र मस्तक पर लात मारकर अपने उपकारीके प्राण लेने पर भी उतारू हो जाता है। दुराकाङ्क्षी बप्पाने भी ऐसाही किया। जो मौर्य नृपति उसका मामा था, उसपर बहुतही कृपा रखता था, और जिसने उसके लिये अपने सामन्तोंको छोड़ा था, बप्पाने उसी मानसिंहको उसके सब उपकारोंको भूलकर और हृदयको पत्थरसा बनाकर सिंहासनसे उतार दिया और विद्वेषी सामन्तोंकी सहायतासे उस-पर अपना अधिकार जमाया। भट्टकवियोंने लिखा है कि "बप्पाने मौर्य्य नृपतिसे चित्तौड़का सिंहासन छीन लिया और स्वयं वहांका मौर (अर्थात् मुकुटस्वरूप) हुआ।" चित्तौड़के सिंहासन पर आरूढ़ होकर सबकी सम्मतिसे उसने "हिन्दूसूर्य" "राजगुरु" और चक्र (अर्थात् राजाधिराज) की पदवी पाई।

बप्पाके बहुतसे बाल बच्चे जन्मे; उनमें कईएक अपने पूर्वपुरुषोंके प्राचीन राज्य सौराष्ट्रको चले गये। जो वहां चले गये उनकी सन्तानें समय पाकर बड़ी प्रभावशालिनी निकलीं *। बप्पाके पुत्रोंमें पांचने मारवाड़में आकर रहना आरम्भ किया वे गोहिल नामसे प्रसिद्ध हुए, परन्तु वहांसे निकलकर अब वे वल्लभीपुरमें बड़े दीन भावसे रहते और अरबोंके साथ वाणिज्य करते हैं।

वीरवर बप्पाके अन्तिम जीवनकी बातें बड़ी अद्भुत हैं और उसके सजातीय लोग इस अद्भुत वृत्तान्तके बहुत छिपानेकी चेष्टा करते हैं। वह वृत्तान्त यों है कि

* "आईने अकबरी" में लिखा है कि अकबरके समय पचास सहस्र गिह्लोट वीर सौराष्ट्रमें थे।

बड़े होने पर वह मातृभूमि, बालसखी और आत्मीय स्वजनोंको छोड़कर खुरासान चला गया और वहां जा तथा उस देशको जीत उसने वहांकी अनेक म्लेच्छ-कामिनियोंसे विवाह किया। पश्चात्, उन कामिनियोंसे उसके कईएक पुत्र और कन्याएँ हुईं।

ठीक एकसौ वर्षकी उमरमें बप्पाका शरीरान्त हुआ। देलवारानरेशके यहां एक प्राचीन इतिहास है; उससे पता लगता है कि बप्पाने इस्पहान, कन्दहार, काश्मीर, ईराक ईरान, तूरान और काफिरिस्तान प्रभृति पश्चिमीय देशोंके भूपतियोंको पराजित करके उनकी कन्याओंसे अपना विवाह कर लिया था और पीछे संन्यासी बनकर सुमेरुके नीचे अन्तिम जीवन व्यतीत किया था और वहां सजीवही समाधि ली थी। उन रमणियोंके गर्भसे उनके १३० पुत्र जन्मे। वे सब "नौशेरे पठान" कहे जाते थे। अपनी माताओंके नामोंके अनुसार उन्होंने स्वतन्त्र स्वतन्त्र वंशोंकी प्रतिष्ठा की थी। इधर उसकी हिन्दू स्त्रियोंके ९८ पुत्र जन्मे थे जो "अग्नि-उपासी सूर्यवंशी" कहे जाते थे।

भट्टग्रन्थोंमें और एक विचित्र विवरण देख पड़ता है; वह यह कि बप्पाकी मृत्यु होने पर उसके मृत शरीरके सत्कारके सम्बन्धमें उसके हिन्दू और मुसलमान पुत्रोंमें बड़ा झगड़ा हुआ था। हिन्दू उसके शवको अग्निमें जलाना चाहते थे और मुसलमान भूमिमें गाड़ना। झगड़ा बढ़ता गया; फल कुछ नहीं हुआ। इसी बीचमें जब उन्होंने उसके शरीरके ऊपरका कपड़ा हटाया तब उनको उसके शवके स्थानमें कमलके खिले हुए असंख्य पुष्प दिखाई दिये। इन फूलोंको उन्होंने मानस सरोवरमें आरोपित कर दिया। फारसदेशके नौशेरवांके विषयमें भी ऐसाही विवरण सुना जाता है।

मेवाड़राजवंशके आदिप्रतिष्ठाता गिह्लोटकुलतिलक वीरवर बप्पारावलकी संक्षिप्त जीवनी लिखी जा चुकी। अब हम उसकी उत्पत्तिका ठीक समय निश्चित करनेकी चेष्टा करते हैं। पहलेही कहा जा चुका है कि महाराज शिलादित्यके राजत्वकालमें संवत् २०५ में वल्लभीपुरका पतन हुआ और उसकी नवीं पीढ़ीमें बप्पारावलकी उत्पत्ति हुई; परन्तु आश्चर्यकी बात है कि राणाजीके पुस्तकालयमें जितने भट्टग्रन्थ हैं उन सभोंमें यही लिखा है कि संवत् १९१ (सन् १३५ ई०) में

उसका जन्म हुआ था। इधर एक शिलालिपिसे * यह प्रकट होता है कि संवत् ७७० (सन् ७१४) में चित्तौड़नगर मौर्य मानराजके अधिकारमें था । राणाजीके यहांके भट्टग्रन्थोंसे यह बात स्पष्ट रीतिसे प्रकाशित होती है कि बप्पा राजा मानका भाञ्जा था और जब वह पन्द्रह वर्षका था तब उसके मामाने उसे अपने सामन्तोंमें सम्मिलित किया था। पीछे सरदारोंकी सहायतासे उनको पदच्युत करके वह स्वयं सिंहासनका अधिकारी बन बैठा था । अब यहां पर यह नहीं कहा जा सकता कि इन सब विभिन्न मतोंमें कौन मत ठीक और माननेके योग्य है। यदि बप्पाको राजा मानका भाञ्जा और समसामयिक माना जाय तो यह समय कैसे युक्तिसिद्ध कहा जा सकता है ? जो हो, सौराष्ट्रमें सोमनाथके † मन्दिरसे एक शिलालिपि आविष्कृत हुई है, उससे यह सन्देह दूर हो जाता है। उस शिलाखण्डमें "वल्लभी

* यह शिलालिपि चित्तौड़के प्रसिद्ध "मानसरोवर"के तटके एक विजयस्तम्भ से ली गई है। इसमें एक स्थानमें लिखा है कि महाराज मानसिंह एक दिन नगर में घूमने गये थे वहां उन्होंने एक बहुतही दुर्बल बुड्ढेको रास्तेमें जाते देखा। उसे देखकर उनके मनमें एक गम्भीर भाव उत्पन्न हुआ । उन्होंने सोचा—"मनुष्यका जीवन क्षणस्थायी है; कमलपत्रपर पड़े जलके बूंदकी भांति चञ्चल है; राज्य और धनरत्न सभी नाश होनेवाले हैं।" इस प्रकार विचारकर महाराजने अपनी कीर्त्ति और नाम अक्षय करनेके लिये यह सरोवर बनवाया।

† इस बातका निश्चय करनेके लिये टाड साहबने बहुत उद्योग किया था और अन्तमें इस विषयमें उन्होंने सफलता पाई थी शिलालिपि, ताम्रपत्र, प्राचीन मुद्रा, खोदितस्तम्भादि मेवाड़के सम्बन्धमें जो जो उपकरण जहां जहां उनको मिल सके वहां वहां जाकर उन्होंने बड़े परिश्रम और यत्नसे उनको देखा और उनके द्वारा सत्य वृत्तान्त जानना चाहा। इस प्रकार अनुसन्धान करते छः वर्ष बीत गये पर फल कुछ न हुआ । इसी सन्देह और चिन्तामें आखिर वे उदयपुरसे सौराष्ट्रकी ओर चले गये। उन्होंने सोचा कि गिह्लोटकुलके उक्त प्राचीन स्थानमें भी चलकर एकबार अनुसन्धान करना चाहिये। सौभाग्यसे वहां जाने पर उनका मनोरथ सिद्ध और परिश्रम सफल हुआ। बहुत अनुसन्धान करनेके बाद वहां सोमनाथके प्रसिद्ध मन्दिरमें उन्होंने वह शिलालिपि पाई जिसका वृत्तान्त ऊपर लिखा गया है।

संवत्' नामक एक स्वतन्त्र संवत्के विषयमें कुछ लिखा है । यह संवत् वैक्रमीय संवत्के ३७५ वर्ष बाद प्रचलित हुआ था।

ऊपर कहा जा चुका है कि २०५ संवत्में वल्लभीपुर विध्वस्त हुआ था; अब निश्चय हो गया कि संवत् २०५ यही वल्लभी संवत् था । इधर वल्लभी संवत् वैक्रमीय संवत्के ३७५ वर्ष बाद आरम्भ हुआ, अत: ३७५ + २०५ = ५८० वैक्रमीय संवत्में (अथवा सन् ५२४ ई०में) वल्लभीपुरको म्लेच्छोंने विध्वस्त किया।

इधर मौर्य नृपतिके शासनसम्बन्धी शिलालेखसे विदित होता है कि बप्पाका जन्म ७७० संवत्में हुआ था। अब यदि ७७० मेंसे ५८० घटा दिये जायँ तो १९० बचते हैं। इनमें केवल एक वर्ष जोड़ देनेसे भट्टकवियोंका बताया समय ठीक हो जाता है; अर्थात् भट्टोंने लिखा है कि संवत् १९१ में बप्पाका जन्म हुआ था । अब यह स्पष्ट प्रकट है कि हमारे और उनके निरूपित समयमें केवल एक वर्षका अन्तर रह जाता है. ऐसी अवस्थामें अवश्यही मानना होगा कि एक वर्षकी न्यूनाधिकता कोई वस्तु नहीं है।

बप्पाने जिस समय चित्तौड़के सिंहासन पर आरोहण किया था उस समय उसकी उमर १५ वर्षकी थी; परन्तु अभी दिखाया जा चुका है कि उसका जन्म संवत् मौर्य्यशिलालेखमें प्रदर्शित संवत्से एक वर्ष कम है, अर्थात् संवत् ७६९ में उसका जन्म हुआ था; अत: संवत् ७६९ + १५ = ७८४ (अथवा ७२८ ई०) में उसने चित्तौड़का सिंहासन प्राप्त किया और इसी संवत्से चित्तौड़में गिह्लोटोंका आधिपत्य प्रारम्भ हुआ। इस समयसे लेकर ११०० वर्षतक मेवाड़के सिंहासन पर ५९ नरपति बैठे।

गिह्लोटकुलके वीरवर बप्पारावलकी उत्पत्तिका ठीक समय निश्चित हो गया और उसकी प्राचीनता प्रमाणित हो गई। यह कम हर्षकी बात नहीं है कि वह अपने समयके पृथ्वीके अन्यान्य वीरोंसे पहले प्रकट हुआ था । उस समय कालीविक्षका वीरवंश पश्चिमी देशोंमें खूब बल प्राप्त करके धीरे धीरे अपना विराट् मस्तक उठा रहा था और खलीफा वलीदकी विजयिनी सेनाएँ इब्रोके किनारे अपनी हरे रंगकी पताका गाड़कर बड़ी वीरतासे सारे योरपदेशको कँपा रही थीं।

मेवाड़राज्यमें "आयतपुर" नामक एक प्राचीन समृद्ध नगर था; वह नगर

इस समय बहुत टूटीफूटी और बुरी अवस्थामें है; असभ्य भील और जङ्गली जन्तु अब वहां निवास करते हैं; बहुत लोग अब इस नगरका नाम भी नहीं जानते। इस आयतपुरके खण्डहरोंमें एक शिलालिपि पाई गई है; उसमें महाराज शक्तिकुमार तक मेवाड़के चौदह नृपतियोंका वंशविवरण लिखा है, उन नृपतियोंमें बप्पा का भी नाम है, परन्तु वहां वह शैल नामसे लिखा गया है। उक्त शिलालिपिकी प्रायः सभी बातें भट्टग्रन्थों और राजपरिवारकी वर्णनपुस्तककी लिखावटसे मिलती हैं, किन्तु केवल एक नाम उसमें अधिक संयुक्त है।

ह्यूम कहता है कि "यद्यपि कविगण अपनी कल्पनाके आगे सच्ची ऐतिहासिक बातें बिगाड़ डालते और अपनी इच्छाके अनुसार सत्य घटनाओंको भी अद्भुत अलङ्कारोंसे अलङ्कृत कर देते हैं, तथापि जब वेही प्राचीन जगत्के एकमात्र इतिहासवेत्ता हैं तब उनकी कल्पनामिश्रित बातें अवश्य सच्चे वृत्तान्तसे भरी रहती हैं।" ह्यूम साहबका यह वाक्य इस स्थानके लिये बहुत उपयुक्त जान पड़ता है; क्योंकि जो नामावली विध्वस्त आदित्यपुरके बचे हुए चिन्हके साथ लोगोंकी दृष्टिसे छिपी जाती थी वह भट्टकवियोंकी मनोमोहिनी कल्पनाकी आड़में ज्योंकी त्यों विराज रही है। वीरवर बप्पाके प्रादुर्भावकेही समयमें मुसलमान सिन्धुनद पार करके पहलेपहल भारतभूमिमें आये थे। अरबी इतिहासोंसे विदित होता है कि ९५ हिजरीमें खलीफा वलीदका सेनापति मुहम्मदबिनकासिम सिन्धुदेश जीतकर गङ्गा के किनारे तक बढ़ आया था। यद्यपि अलमकीनने मुसलमानोंके केवल सिन्धुपर आक्रमण करनेका हाल लिखा है परन्तु उस समय भारतवर्षकी जो दशा थी उसका अनुमान करनेसे स्पष्ट समझमें आ जाता है कि उन दिनों यहांके अनेक प्रदेशों में विदेशियोंके आक्रमणके कारण उथलपुथल मच रहा था। अजमेरके मानिकराय के राज्यपर खृष्टीय आठवीं शताब्दिके मध्यमें शत्रुओंके एक दलने आक्रमण किया था; कहा जाता है कि आक्रमण करनेवाले जहाजसे अल्बर नामक स्थानमें उतरे। यदि इन आक्रमणकारियोंको कासिम और उसके साथी माननेमें किसीको कुछ सन्देह हो * तो वह सन्देह सिन्धुदेशके अधिकारी दाहिरका मृत्युवृत्तान्त

* इस अवसर पर मुहम्मदबिनकासिम चितौड़की ओर बढ़ा था। वहां पहुँचने पर बप्पाने उसे पराजित किया था।

पढ़नेसे बहुत कुछ मिट सकता है। अबुलफजलने लिखा है कि ६५ हिजरी (सन् ७१२ ई०) में कासिमने दाहिरका राज्य विध्वस्त किया था; उस समय वह स्वयं मारा गया था और उसका पुत्र राज्य छोड़कर चित्तौड़के मौर्यनृपतिके यहां चला गया था।

बप्पासे शक्तिकुमारतक (दो शताब्दियोंमें) चित्तौड़के सिंहासन पर ६ नृपति बैठे। इनमें चार बड़े वीर और प्रतापी निकले। - (प्रथम) कनकसेन सन् १४४ई० में, (द्वितीय) शिलादित्य सन् ५२५ में,—इसके समयमें वल्लभीपुर विध्वस्त हुआ; (तृतीय) बप्पा सन् ७२८ ई० में, और (चतुर्थ) शक्तिकुमार सन् ६६८ में।

तीसरा अध्याय।

बप्पा और समरसिंहके बीचके नृपतियोंका वृत्तान्त;—बप्पाके वंशधर,—अरबोंका भारतपर आक्रमण करना;—चित्तौड़रक्षाके निमित्त जो हिन्दू नृपति युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए थे उनका संक्षिप्त विवरण।

(१)

ऊपर कहा जा चुका है कि बप्पाने संवत् ७८४ (सन् ७२८) में चित्तौड़के सिंहासन पर आरोहण किया। इसके पश्चात् जिसदिन वह चित्तौड़राज्य त्यागकर ईरान चला गया उस दिनसे लेकर महाराज समरसिंहके राजत्व तककी ऐतिहासिक बातें यथासम्भव भट्टकवियोंके ग्रन्थोंसे संग्रह करके हम यहांपर लिखते हैं। यह समय केवल मेवाड़हीके लिये नहीं वरञ्च समग्र भारतवर्षके लिये एक नया युग था। यह कौन नहीं कहेगा कि जिस समय मुसलमानोंके आक्रमणसे आर्य-लक्ष्मीके पांव भारतभूमिसे उठ गये थे और भारतवर्षका राजमुकुट भारतीय आर्य-नृपतियोंके मस्तकसे उठकर यवनोंके शिरपर जा स्थापित हुआ था वह समय भारतके लिये नवीन युग था? वीरवर बप्पारावलकी ईरानयात्रासे लेकर समरसिंहके सिंहासनारोहण तक चार शताब्दियां बीत गईं। इन चारसौ वर्षोंमें मेवाड़के सिंहासन पर अठारह नरपति आरूढ़ हुए। यद्यपि भट्टकवियोंके ग्रन्थोंमें इन नृपतियोंका पूरा पूरा विवरण नहीं मिलता तथापि जो कुछ मिलता है उससे

स्पष्ट प्रकट होता है कि वे वीरवर बप्पाके उपयुक्त वंशधर थे। उनकी कीर्त्तिकी बातें आजतक राजस्थानके अनेक शिलाखण्डोंपर ज्योंकी त्यों वर्त्तमान हैं।

इससे पहले आयतपुरके शिलालेखके आधार पर लिखा जा चुका है कि बप्पा और समरसिंहके बीचमें संवत् १०२४ (सन् ९६८ ई०) में शक्तिकुमार नामक एक राजा मेवाड़के राजासन पर बैठा था। इधर एक प्राचीन और विश्वसनीय जैनलेखसे विदित होता है कि शक्तिकुमारसे चार पीढ़ियां पहले एक और प्रतिष्ठावान् नरपतिने चित्तौड़शासनका अधिकार प्राप्त किया था। उसका नाम उत्कुट था। खुमानरायसामें लिखा है कि बप्पा और समरसिंहके राजत्वके बीचके समयमें मेवाड़राज्य पर एकबार मुसलमानोंने आक्रमण किया था। जिस राजाके राजत्वकालमें यह घटना संघटित हुई थी उसका नाम खुमान था। महाराज खुमानने सन् ८१२ से ८३६ ई० तक राज्य किया था।

इस समयकी भारतकी ऐतिहासिक बातें गहरे अन्धेरेमें छिपी हुई हैं और उस अन्धकारमें प्रवेश कर ऐतिहासिक वृत्तान्तका पता लगाना अत्यन्त कठिन है; तौभी भट्टकाव्यों और आईनेअकबरी तथा फरिश्ता आदि ग्रन्थोंकी सहायतासे जहां तक सम्भव है वहांतक हम मेवाड़के इतिहासका पता लगानेकी चेष्टा करते हैं। सबसे पहले बप्पाके वंशधरोंका हाल लिखा जाता है।

पहलेही कहा जा चुका है कि गिह्लोटकुल चौबीस शाखाओंमें विभक्त है। इन चौबीस शाखाओंमें कई शाखाएँ बप्पासे निकली हैं। चित्तौड़ जय करनेके थोड़े दिन बाद बप्पा सौराष्ट्र प्रदेशमें गया। सौराष्ट्रके निकटका बन्दरद्वीप उस समय इसपगुल * नामक राजाके अधिकारमें था। इस इसपगुलके एक कन्या थी। बप्पा उससे विवाह करके उसे चित्तौड़में लाया और उसके साथ वहांसे वह बाणमाताकी मूर्त्ति भी लेता आया। उस पवित्र मूर्त्तिको लाकर उसने चित्तौड़के जिस मन्दिरमें स्थापित किया इस समय भी वह उसी मन्दिरमें ज्योंकी त्यों वर्त्तमान है। मेवाड़में भगवती बाणमाताकी पूजा एकलिङ्गदेवकी भांति अबतक होती है।

देवबन्दरके अधिपति इसपगुलकी कन्याके गर्भसे बप्पाके अपराजित नामा

---

* कहा जाता है कि चोलराज्य इसी इसपगुलने प्राप्त किया था। बहुतोंने इसे बाणराजका पिता बताया है।

एक पुत्र हुआ । इससे पहले वह द्वारकाके निकटके कालिबाव नगरके प्रमार राजाकी कन्यासे विवाह कर चुका था और उसके गर्भसे उसे असिल नामक एक पुत्र हो चुका था; परन्तु वह लड़का अपने ननिहालमें रहता था इससे चित्तौड़का राजमुकुट प्राप्त नहीं कर सका । जब उसने देखा कि उसके अपने पिताके घर न रहनेके कारण उसका छोटा सौतेला भाई राज्यपर अभिषिक्त हो गया तब सौराष्ट्र प्रदेशमें † स्वतन्त्र राज्य स्थापित करके वहां एक शाखाकुलकी प्रतिष्ठा की। इसके अनुसार उसके वंशधर "असिल गिह्लोट" कहलाये । समय पाकर वे इतने उन्नत हुए कि अकबर बादशाहके शासनकालमें पचास सहस्र सैनिक पुरुष युद्धस्थलमें इकट्ठा कर सके । अपराजितके समयमें कोई ऐसी आवश्यक घटना नहीं हुई जो वर्णनके योग्य हो । उसके खलभोज और नन्दकुमार नामक दो पुत्र थे । प्राचीन उत्तराधिकारविधिके अनुसार बड़े खलभोजने पिताका सिंहासन प्राप्त किया। नागदाकी घाटीमें टाड साहबको एक शिलालेख मिला । उस लेखमें प्रकट हुआ कि महाराज अपराजित एक वीर नृपति थे । छोटे भाई नन्दकुमारने राजा भीमसेन दोदाको मारकर उसका दक्षिणस्थित देवगढ़राज्य अपने अधिकारमें कर लिया।

महाराज खलभोजका ‖ शरीरान्त होनेपर प्रसिद्ध खुमान चित्तौड़के सिंहासनपर अभिषिक्त किया गया । मेवाड़के इतिहासमें खुमानकी विशेष प्रसिद्धि और प्रतिष्ठाका विवरण देख पड़ता है । खृष्टीय नवीं शताब्दिके प्रारम्भमें वह चित्तौड़के सिंहासनका अधिकारी हुआ । उसके सिंहासन प्राप्त करनेके कुछही दिन बाद मुसलमानोंने उसके राज्य पर आक्रमण किया । स्वाधीन पवित्र चित्तौड़पुरी पर कठिनहृदय म्लेच्छोंने आक्रमण किया, यह देखकर भारतके तत्कालीन क्षत्रिय नृपतिगण अपनी सेनाओंके सहित उसकी रक्षाके लिये वहां आये । खुमानरायसा

† जिस प्राचीन लेखसे यह वृत्तान्त लिया गया है उसमें लिखा है कि इसने अपने नामके अनुसार एक दुर्गका नाम असिलगढ़ रखा था । इसके पुत्रका नाम विजयपाल था। विजयपाल काम्बेराज्यका अधिकार पानेकी चेष्टा करनेके समय वहांके देवीवंशी राजाके हाथों संग्राममें मारा गया।

‖ खलभोजका दूसरा नाम कर्ण था । इसीने महर्षि हारीतके आश्रममें भगवान् एकलिङ्गका मन्दिर प्रतिष्ठित किया था ।

नामक काव्यग्रन्थमें यह बात स्पष्टतासे लिखी है कि महाराज खुमानने उन राजाओंकी सहायता पाकर बड़ी वीरता और साहससे प्रचण्ड शत्रुओंको रोका था। कविने जिस सजीवतासे उस भयङ्कर समरका वृत्तान्त वर्णन किया है सो उस ग्रन्थके पढ़े बिना दूसरे किसी प्रकार ठीक ठीक नहीं समझा जा सकता। कहते हैं कि जब शत्रुदलने चित्तौड़पर चढ़ाई करके कर मांगना आरम्भ किया तब क्रोधके मारे महाराज खुमानके सिरसे पैरतक आगसी लग गई और रोम रोमसे मानो चिनगारियां निकलने लगीं। बड़ी घृणासे म्लेच्छोंका प्रस्ताव लौटाकर उन्होंने विकट स्वरमें रणके विविध बाजे बजवाये। देखतेही देखते वीर क्षत्रियगण लड़ाईके सामानसे सजधज कर बड़े उत्साहके साथ शत्रुओंकी दुष्टताका फल चखानेके लिये युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए। वीरवर बप्पारावलकी सूर्यमुखी पताका आकाशमें फरफराने लगी। क्षत्रियों और मुसलमानोंमें घोर युद्ध आरम्भ हुआ। दुष्ट म्लेच्छोंने बड़े कुसमयमें चित्तौड़ पर चढ़ाई की थी, बड़े घमंडके अहङ्कारमें भरकर उन्होंने महाराज खुमानसे कर मांगा था। आज इस ढिठाईका उनको उपयुक्त फल मिला। क्षत्रिय वीरोंकी चोट खाकर उनमेंसे अधिकांश मारे गये; बाकी प्राण बचाकर इधर उधर भागे, परन्तु इससे भी उनका छुटकारा नहीं हुआ। विजयी खुमानने उनका पीछा किया और उनके सेनापति महमूदको पकड़कर वह चित्तौड़में लाया। इस घटनाके दो शताब्दि बाद जो प्रचण्ड मुसलमान वीर गजनीके पहाड़ी देशसे भारतभूमिमें आया था उसका भी यही नाम था। इस स्थान पर हम उस समयके भारतवर्ष और अरबदेशके सम्बन्धका निर्णय करना चाहते हैं।

जिस समय खलीफा उमर बुगदादके सिंहासन पर आसीन था उसी समय मुसलमानोंने पहले पहल भारतपर चढ़ाई की थी। उस समय गुजरात और सिन्धुराज्य यहांके प्रधान वाणिज्यस्थल थे। इन दोनों समृद्ध राज्योंसे व्यापारसम्बन्ध करनेके लिये उमरने प्रसिद्ध टाइग्रिस नदके मुहाने पर बसोरा नगर बसाया और वहां एक बन्दरगाहकी नींव डाली। फिर तो भारतकी वाणिज्य सामग्रीकी सच्छता देखकर मुसलमानोंका लोभ क्रमशः बढ़ने लगा। केवल व्यापारकी वस्तुओंके मंगाने और भेजनेसे उनका लोभ शान्त नहीं हुआ; जिस सुन्दर देशके बहुमूल्य रत्नों और उपयोगी वस्तुओंको देख देखकर वे आश्चर्य करते थे उसके देखनेको

उनकी इच्छा हुई। निदान अबुल आयस नामक सेनापतिके साथ एक बड़ा सैन्य-दल भारतकी ओर चला। इसने सिन्धुराज्य पर चढ़ाई की; परन्तु भारतवासियोंकी वीरता अबतक कम नहीं हुई थी। आरोर नामक क्षेत्रमें हिन्दू और मुसलमानोंमें युद्ध आरम्भ हुआ। इस युद्धमें अबुलआयस मारा गया; किन्तु इतने पर भी खलीफा गण अपना लोभ नहीं रोक सके। उमरके परलोकवासके पश्चात् खलीफा उसमान उसके सिंहासनका अधिकारी हुआ; उसने बुगदादका राजासन पाकर भारतवर्ष की भीतरी अवस्थाका पता लगानेके लिये दूत भेजा; इधर स्वयं आक्रमण करनेकी इच्छासे एक विशाल सैन्यदल इकट्ठा किया; पर उसका संकल्प सिद्ध नहीं हुआ। कुछ कालके पश्चात् खलीफा अलीने अपने सेनापतियोंको भारतकी ओर भेजा; उन्होंने सिन्धुराज्य जीता; पर अधिक दिन वे यहांके अधिकारी न रह सके; खलीफा अलीकी मृत्युके बादही उनको यह देश छोड़कर चला जाना पड़ा। इसके बाद खुरासानके अधिकारी इजीद और खलीफा अबुलमलिकके समयमें भी कई बार भारतजयके उद्योग हुए, पर सफलता किसीमें न हुई। इस प्रकार कुछ दिन बीत गये; क्रमशः भारतके भाग्यमें कठोर परिवर्त्तन होनेका समय निकट आया; अर्थात् इन घटनाओंके बाद खलीफा वलीद अपने पिताके राज्यपर अभिषिक्त हुआ। उसने राज्यशासनका अधिकार पातेही एक बड़ी सेनाके साथ भारतपर चढ़ाई कर दी। उस समय उसका प्रचण्ड आक्रमण कोई नहीं रोक सका और उसने न केवल सिन्धुराज्य और उसके आसपासके स्थानोंपर अधिकार कर लिया वरच्च गङ्गाके पश्चिम तीरके प्रदेशोंके अधिपतियोंसे कर भी प्राप्त किया। यदि हम यह कहें कि यह समय मुसलमानोंके लिये स्वर्णयुग था तो कदाचित् हमारा कहना अत्युक्ति न समझा जायगा; क्योंकि इस समय इनकी वीरतारूपी जो भयानक चिनगारियां निकल रही थीं उनको शान्त करनेके लिये जो पराक्रमी नृपति अग्रसर हुए उनमेंसे अनेक पतङ्गकी भांति भस्म हो गये; उनका उस समयका हाल पढ़नेसे एकबार स्तम्भित हो जाना पड़ता है। और तो क्या, पूर्व और पश्चिम के दो विशाल राज्य उस समय मुसलमानोंके आक्रमणसे उत्पीड़ित हो रहे थे। इधर तो सिन्धुनदतीरके दाहिर देशपतिके अधःपतनके साथ साथ भारतका नाश होनेकी सूचना हुई, उधर अन्दलुसका वीर सम्राट् रडरिक रणक्षेत्रमें गिरा, जि-

बचे गये राजकुलकी एकदम समाप्ति हो गई। इन दोनों भयानक घटनाओंका हाल मुसलमानोंकी वीरताके चिह्नस्वरूप जगत्‌के इतिहासमें खूनके अक्षरोंमें लिखा सदा वर्त्तमान रहेगा।

खलीफावलीदके सेनापति मुहम्मदबिनकासिमने ९९ हिजरी (सन् ७१८ ई०) के प्रारम्भमें भारतमें आकर सिन्धुदेशपर चढ़ाई की। देशवैरी म्लेच्छोंके कराल ग्राससे स्वदेशकी रक्षा करनेके निमित्त वहांके अधिकारी दाहिरराजने घोरयुद्ध किया; पर इस संग्रामका कुछ अच्छा फल नहीं हुआ। उस मुसलमान सेनापतिके हाथोंमें पड़कर दाहिरराजको अपने राज्य अपने गौरव यहांतक कि अपने प्राणोंकी भी आहुति कर देनी पड़ी। विजयी मुहम्मदबिनकासिमने जीत और लूटमें पाई हुई सामग्रीके साथ साथ क्षत्रियराज दाहिरकी दो अत्यन्त रूपवती कन्याओंको भी अपने बादशाहके पास भेजा; पर इन क्षत्रियकुमारियोंके कारण उसे बड़ी दुर्दशाके साथ अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा। आईनेअकबरी और फरिश्तामें लिखा है कि जिस समय दोनों लावण्यमयी रमणियां दमिश्क नगरमें पहुँचाई गईं और खलीफाने उनकी मनोमोहिनी सुन्दरताका हाल सुना उस समय उसका हृदय जो जीतके समाचारोंसे पहलेहीसे प्रफुल्लित हो रहा था और भी उत्साह और प्रसन्नतासे भर गया। साथही उसके मनमें पापवासना उत्पन्न हुई। आनन्दभवनमें जाकर उसने आज्ञा दी कि "जाओ बड़ी शाहजादीको मेरे पास ले आओ।" तुरन्तही आज्ञाका पालन हुआ; पवित्रहृदया राजकुमारी कामी मुसलमान अधिकारीके पास भेजी गई! निस्सहाया— निराश्रया - अनाथिनी राजपूतबालाको लोग पापी म्लेच्छके विलासके लिये ले चले! कौन रक्षा करता? सिन्धुराज दाहिरके पवित्र कुलको कलङ्कित होनेसे कौन बचाता? पर भगवान्‌ने दया की। जब राजनन्दिनीने वहां पहुँचकर अपने बचावका कोई दूसरा उपाय न देखा, जब उसको निश्चय हो गया कि यह दुष्ट अवश्यही पवित्र सतीत्वरत्न नष्ट करेगा, तब उसने एक ढङ्ग और बहाना सोचा; कहा कि "महाराज! मेरे शरीरको हाथ न लगाइये। यह देह अब आपके स्पर्शयोग्य नहीं है! दुष्ट कासिम पहलेही बलपूर्वक हम दोनोंका धर्म नष्ट कर चुका है।" यह आश्चर्यमय वाक्य सुनतेही खलीफाकी आंखें क्रोधसे लाल हो गईं; शरीरसे चिनगारियां निकलने लगीं। उसने तड़पकर

कहा—"कासिमको एक ताजा खालमें जिससे बदबू निकलती हो जिन्दाही सी-कर फौरन दरबारमें हाजिर करो।" शीघ्रही इस कठोर आज्ञाके अनुसार काम कर दिया गया। अभागे कासिमने खलीफाके क्रोधमें पड़कर अपना प्यारा जीवन खोया; पवित्रचरित्रा राजपूतसतीने कौशलसे अपनी पवित्रताकी रक्षा की; राज-कुमारीका कौशल किसीकी समझमें नहीं आया।

ऊपर लिखी घटनाके बाद मुसलमान लोग भारतवर्षमें आकर किसी हिन्दू-राज्यपर अधिकार कर सके थे या नहीं इस विषयमें किसी इतिहाससे कुछ विदित नहीं होता। इतिहासोंसे केवल इतना पता लगता है कि वलीदके बाद मनसूरके शासनकालमें उसका सेनापति इजीद विद्रोही हो गया था जिससे उसका पुत्र भागकर सिन्धुदेशमें चला आया था। पर यह एक बहुत छोटी बात है; ऐसी नहीं कि जिसके विषयमें विशेष कुछ लिखा जाय। उस समय जब कि मनसूर स्वयं खलीफा नहीं किन्तु खलीफा अब्बासका प्रतिनिधि था सिन्धराज्य और भारतके अन्यान्य पश्चिमीय राज्य उसके शासनमें थे। उसीके समयमें वीरवर बप्पा स्वदेश त्यागकर ईरानको गया था।

शार्लिमानके समकालीन प्रसिद्ध हारूँरशीदने अपने पुत्रोंमें राज्यका भाग बांटते समय दूसरे पुत्र मामूनको खुरासान, जबूलिस्तान, काबुल, सिन्ध और भारतवर्षका अधिकारी बनाया; परन्तु पिताका देहान्त होतेही बड़े भाईको सिंहासनाच्युत करके मामून सन् ८१३ ई० में स्वयं राजराजेश्वर बन बैठा। फिर ८३३ ई०तक वह राज्य करता रहा। इसके राज्याधिकारके समय महाराज खुमान चित्तौड़के सिंहासन पर आरूढ़ थे। उदयपुरके राजभवनमें जो ग्रन्थ रखे हैं उनके देखनेसे विदित होता है कि खुरासानके अधिपति महमूदने जबूलिस्तानसे आकर चित्तौड़नगरपर आक्रमण किया था। इस आक्रमणका जो समय निर्दिष्ट हुआ है उस समय (जैसा कि फारसीके इतिहासोंसे मालूम होता है) खुरासानमें किसी महमूदका अधिकार नहीं था; इससे अनुमान होता है कि कापी लिखने वालोंने भूलसे मामूनकी जगह महमूद लिख दिया है।

इस घटनाके बाद २० वर्षतक मुसलमानोंने भारतवर्षपर चढ़ाई नहीं की। उस समयसे उनका प्रताप और तेज धीरे धीरे घटने लगा। भारतवर्षके भिन्न भिन्न

स्थानों में उन्होंने अधिकार कर लिया था उनमेंसे एक सिन्धको छोड़ बाकी सब राज्य क्रमशः उनके हाथोंसे निकल गये। जिसके अधिकारमें (८५०ई०में) सिन्ध था वह हारूँरशीदका पोता था; वह बुगदादमें शासन करता था। उसकी मृत्यु होनेपर उसके राज्यकी दशा बहुत बिगड़ गई। अन्तमें एकदम बल टूट जानेसे वह राज्य इस तरह अधःपतित हुआ कि उसका हाल पढ़कर बहुत शोक होता है। जिस बुगदादके खलीफाओंने अपनी वीरतासे किसी समय योरप और एशिया में हलचल मचा दी थी वह बुगदाद अन्य वस्तुओंकी भांति खुलेआम नीलाम कर दिया गया! जिसने अधिक दाम दिया उसीने उसे खरीदा! †

† इस स्थानपर समसामयिक गिह्लोट और मुसलमान नृपतियोंकी एक तालिका प्रकाशित की जाती है,—

गिह्लोट।	सयम।	मुसलमान।	समय।
		[बुगदादके खलीफा]	
बप्पाका जन्म	७१३ ई०	वलीद (११ वां)	७०५ से ७१५ ई०
उसका चित्तौड़पर अधिकार	७२८ ई०	द्वितीय उमर (१३वां)	७१८ से ७२१
मेवाड़राज्यशासन…	—		
चित्तौड़-त्याग……	७६४	हसन (१५ वां)	७२३ से ७४२
अपराजित………		मन्सूर (२१वां)	७५४ से ७७५
खुलभोज ………	—		
खुमान…………	८१२ से ८३६ ई०	हारूँरशीद (२४वां)	७८६ से ८०९
भर्तृभाट…………		मामून (२६ वां)	८१३ से ८३३
उल्लुट … ………			
नरवाहन ………		[गजनीके नृपति]	
शालिवाहन … …			
शक्तिकुमार…… …	९६८ ई०	अलप्तगीन	९५७
अम्बाप्रसाद………			
नरवर्मा…………	—	सुबुक्तगीन	९७७
यशोवर्मा… … …	—	महमूद	९९७ से १०२७

जिस दिन बुगदादराज्यका इस प्रकार शोचनीय अधःपतन हुआ उस दिन भारतसे खलीफाओंका रहा सहा सम्बन्ध भी टूट गया,—भारतभूमिने कुछ दिनों के मुसलमानोंके आक्रमणसे छुट्टी पाई। पर दुर्भाग्यसे यह छुट्टी बहुत थोड़े दिनोंके लिये नहीं हुई; क्योंकि भारतके भावी नाशका बीज बोनेके लिये शीघ्रही खुरासान का शासनकर्त्ता सुबुक्तगीन * दलबलसहित आ चढ़ा। ३६५ हिजरी (सन् ९७५ ई०) में उसने सिन्धुनद पार करके भारतमें प्रवेश किया । उस समय सैकड़ों हिन्दू पतङ्गकी भांति जलकर भस्म हो गये; सैकड़ों अपना पवित्र सनातन धर्म त्यागकर मुसलमान होनेको लाचार किये गये। इसी शताब्दिके अन्तमें सुबुक्तगीन ने एकबार फिर भारतपर चढ़ाई की। इस बार भी उसके सैनिकोंने कुरान और तलवार हाथमें लिये हुए आकर भारतवासियोंको घोर दुःख पंहुँचाया और अपनी घोर नीचता तथा कठोरताका परिचय दिया। परन्तु इस बार भारतभूमिमें उसके आनेसे जिस हानिने जड़ पकड़ी उसका विचार करनेसे आज भी हृदय शोकसे उमड़ आता है। इस अन्तिम आक्रमणके समय सुबुक्तगीनके साथ उसका पुत्र—भारतका प्रचण्ड राहु—प्रसिद्ध महमूद भी आया था । उस समय उसकी

* कर्नल टाडने लिखा है कि सुबुक्तगीनके पिताका नाम अलप्तगीन था; परन्तु डिगायन, डिहारबिल्ट और ब्रिग प्रभृति इतिहासवेत्ताओंके मतका अवलम्बन कर एलफिन्ष्टन् साहब लिखते हैं कि असलमें वह अलप्तगीनका एक खरीदा हुआ दास था; तुर्किस्तानके किसी सौदागरसे द्रव्य देकर अलप्तगीनने उसे खरीदा था । बाद उसमें अनेक गुण देखकर उसने अपनी कन्यासे उसका विवाह कर दिया था। (Elphinstone's History of India Page 320) अबुलफिदा कहता है कि अपनी कन्या देकर अलप्तगीनने सुबुक्तगीनको अपना उत्तराधिकारी बना दिया था; पर फरिश्ताका लिखनेवाला इस बातका विरोध करता है। उसके लेख का सारांश यह है कि अलप्तगीनके इसहाक नामक एक पुत्र था। पिताकी मृत्यु पर वह सिंहासनका अधिकारी हुआ, पर थोड़ेही दिनोंमें मर गया; तब सुबुक्तगीनने उसके स्थान पर स्वयं राज्याधिकारी बनकर अलप्तगीनकी कन्याको अपनी पत्नी बनाया।

उमर बहुत थोड़ी थी पर उस छोटी अवस्थामेंही उसने अपने पिताकी अनर्थकर बातें ध्यानसे सुनी थीं । यहांका धन रत्न देखकर उसने उसी समय दृढ़ निश्चय किया था कि यहां अवश्य चढ़ाई करके लूट मार करना चाहिये। फिर कुछ दिन बाद जब उसको पिताका सिंहासन मिला तब वह अपनी इच्छा पूरी करनेको तत्पर हुआ। उसने अपनी पैशाचिकी इच्छाके पूरा करनेमें भारतकी जो दुर्दशा की उसका चिन्ह भारतके स्थान स्थानमें इस समयतक वर्त्तमान है; इस समय भी सोमनाथ, चित्तौड़ और गिर्नारके देवमन्दिरोंके देखनेसे उसकी दुष्टता लोभ और पाशवाचारका साफ साफ पता लग जाता है । निठुर महमूदने बारह बार भारतपर चढ़ाई की और हर बार धन रत्न लूट तथा नगर ग्राम उजाड़कर इस देशको भीषण श्मशानके समान कर दिया । उन द्वादश भीषण आक्रमणोंके कारण (जो शीघ्र शीघ्र हुए) भारतको जो चोट पहुँची उसका चिन्ह अबतक लोगोंके हृदयसे नहीं मिटा है। जिस कालमे उस हिन्दूविद्वेषी मुसलमान वीरने सर्वसंहारक मन्त्रसे उत्साहित होकर संसारको अपनी नीचता कठोरता और स्वार्थपरताका परिचय दिया था उस कालको बीते बहुत दिन हो गये; उसने जिस प्यारी गजनी नगरीको सुसज्जित करनेके लिये भारतके सुन्दर सुशोभित नगरोंका धन रत्न लूटा था वह शोभामयी गजनीपुरी इस समय भयानक रेगिस्तानमें पड़ी दुर्दशा भोग रही है; मानो उस बचे हुए ढेरसे यह ध्वनि निकल रही है कि "मनुष्यकी स्थिति कितने दिनोंके लिये है ? दर्प, गर्व और अहङ्कारकी उमर कितनी है ?" अस्तु ।

हिजरी प्रथम शताब्दिसे लेकर चौथी शताब्दिके अन्ततक खलीफाओंके साथ भारतीय नृपतियोंका जो कुछ सम्बन्ध था उसका संक्षिप्त वृत्तान्त हमने लिख दिया। आवश्यकता समझकर हमको थोड़ी देरके लिये असल विवरण छोड़ देना पड़ा था; अब हम पुनः पूर्ववर्णन लिखना आरम्भ करते हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि मौर्यवंशी महाराज मानसिंहके राजत्वकालमें म्लेच्छोंने चित्तौड़पर आक्रमण किया था और उसी समयसे वीरवर बप्पाकी अभ्युन्नतिकी जड़ बँधी थी । जान पड़ता है कि इजीद उन आक्रमणकारी म्लेच्छोंका अधिनायक था या मुहम्मद बिनकासिमने सिन्धदेशसे आकर मान राजा पर चढ़ाई की थी। परन्तु ठीक ठीक इस बातका निश्चय करना कि कौन मुसलमान चित्तौड़पर आ टूटा था अत्यन्त

कठिन है, क्योंकि फारसी भाषाके इतिहासोंमें इस युद्धघटनाके सम्बन्धमें कोई विवरण नहीं मिलता। जिन जिन लड़ाइयोंमें खलीफाओं या उनके यहांके सेनापतियोंने हिन्दुओंपर विजय प्राप्त किया था मुसलमान इतिहासकर्त्ताओंने केवल उन्हीं लड़ाइयोंका हाल अपने इतिहासोंमें लिखा है; इनके सिवा भी खलीफाओंके सेनापति और विद्रोही प्रतिनिधि समय समय पर भारतमें आये थे इस विषयमें मुसलमान लेखकोंने कुछ नहीं लिखा। कदाचित् अपने जातिभाइयोंका अगौरव और अपमान छिपा रखनेहीके लिये उन्होंने ऐसा किया। वे समस्त संग्रामवृत्तान्त एकमात्र भट्टकवियोंके काव्यग्रन्थोंमें वर्णित हैं। † यद्यपि वह लिखावट अस्पष्ट है, ऐसी नहीं है कि सहजमें समझी जा सके, तथापि अनुसन्धान करनेसे उनमेंसे अनेक ऐतिहासिक वृत्तान्त संग्रहीत हो सकते हैं। इन खलीफाओंके शासनसमयमें भारतमें मानों एक प्रलय लानेवाला नवीन युग उपस्थित हुआ था। कितने राज्य विध्वस्त हुए; कितने अभागी नृपति राज्यच्युत हुए और मारे गये। वास्तवमें उस समय देशकी प्रजाओंमें हृदयविदारक हाहाकार मच गया था। जिस दुर्दान्त मुसलमानने भारतमें ऐसा भयानक अनर्थ कर रखा था उसके सम्बन्धमें देशी इतिहासोंमें नाना प्रकारके विवरण देख पड़ते हैं। कहीं वह दैत्य, कहीं राक्षस और

† भट्टकवियोंके ग्रन्थोंमें वर्णित है कि "रोशनअली नामक एक फकीरने गढ़-बिटलीमें (अजमेरका प्राचीन नाम है) प्रवेश कर वहांके नृपतिके दहीके पात्रमें हाथ डाल दिया, इससे राजाने अप्रसन्न होकर उसकी एक उंगली कटवा दी। यह कटी हुई उँगली आकाशमार्गसे उड़कर मक्कामें पहुँची। इसके पश्चात् लोग उसे खलीफाके पास ले गये। खलीफाने उस उंगलीको तुरन्त पहचान लिया और हिन्दू राजाके इस अत्याचारका उपयुक्त प्रतिफल देनेकी इच्छासे सेनापतिको एक बड़ी सेना सज्जित करनेकी आज्ञा दी। उस सैन्यदलने घुड़सवार सौदागरोंके रूपमें आकर अजमेर नगरपर आक्रमण किया।"—अब यदि इस विवरणमेंसे काल्पनिक बातें निकालकर ऐतिहासिक तत्वका पता लगाया जाय तो स्पष्ट विदित होगा कि मुसलमानधर्मका प्रथम प्रचारक जब अजमेरमें आया था तब अजमेरके राजाने किसी प्रकारसे उसका अपमान किया था और इसी अपमानका बदला लेनेके लिये खलीफाने सेना भेजी। उस समय अजयपाल अजमेरका अधिकारी था; अब

कहीं ऐन्द्रजालिक लिखा गया है। यह भी लिखा है कि कभी वह सिन्धुराज्यसे आया, कभी समुद्रमार्गमें जहाजपर उसका आगमन हुआ। उस शान्तिनाशक भारतवैरीके विषयमें लोगोंके भिन्न भिन्न मत हैं।

उसने सुना कि मुसलमान लोग जहाजों पर सवार होकर चढ़ाई करनेके लिये आ रहे हैं तब वह सैन्यादिके सहित कच्छ उपकूलके अन्जर नामक स्थानको तुरन्त चला गया। वहां दोनों दलोंमें घोर संग्राम हुआ। लड़ते लड़ते अन्तमें अजयपाल वीरगतिको प्राप्त हुआ। उसी संग्रामस्थलमें एक वेदिका बनाई गई। उस वेदिकाके ऊपर अजयपालकी पत्थरकी एक प्रतिमूर्त्ति खड़ी की गई। वह मूर्त्ति घोड़ेपर सवार है और उसके एक हाथमें भाला भी है। जिस जगह यह प्रतिमूर्त्ति बनी है वहां प्रति वर्ष नियत समयपर मेला लगता है। वह मेला "अजयपालका मेला' कहा जाता है।

(२)

गिह्लोट, चौहान, सौर तथा यादवोंके ऐतिहासिक ग्रन्थोंसे पता लगता है कि वैक्रमीय संवत् ७१० से ७८० (अथवा ई० सन् ६५४ से ७२४) तक उनके राज्योंमें बड़ी गड़बड़ फैल रही थी; पर यह नहीं विदित होता कि इस गड़बड़के कारण कौन लोग थे। कहा जाता है कि संवत् ७५० में यदुवंशके एक नृपतिने अपनी राजधानी शालपुरसे निकाले जानेपर शतद्रुके पूर्व पारकी मरुभूमिमें आश्रय लिया था। जिस शत्रुने उसे इस शोचनीय अवस्थामें डाला था भट्टग्रन्थोंमें उसका नाम "फरीद" लिखा है। इधर दूसरी ओर विदित होता है कि अजमेरका चौहानराज माणिकराय ठीक इसी समय स्वदेशरक्षा करनेमें शत्रुओंके द्वारा मारा गया *।

पञ्जाबप्रदेशका सिन्धुसागर नामक दोआब इस समय जोहियावंशी नृपतियोंके अधिकारमें था और हारकुलके पूर्वपुरुष गोलकुण्डमें रहते थे; ये दोनों ठीक एक-ही समय अपने अपने राज्यसे हटाये गये। जिस शत्रुने इनको राज्यच्युत किया भट्टोंने उसको अपने ग्रन्थोंमें दानव लिखा है। उसका नाम "गर-आराम" था। कहा जाता है कि वह असुर (शत्रु) गज्नीके निकटके गजनीबन्द नामक पहाड़ी प्रदेशसे आया था। ठीक इसी विप्लवके समय पाटण नगरके प्रतिष्ठाताका पूर्वपुरुष सौराष्ट्र उपकूलके बन्दरद्वीपसे निकाला गया था। आश्चर्य! एकही समयमें भारतके इन भिन्न भिन्न प्रदेशों पर किसकी कुदृष्टि पड़ी थी? किसने भारतभूमिमें यह महा विप्लव मचाकर भारतसन्तानके शान्तिसुखमें बाधा डाली थी? हिन्दू ऐतिहासिकोंकी लिखावटसे इस विषयमें कुछ भी विदित नहीं होता। मुसलमानोंके इतिहासोंसे पता लगता है कि इस विप्लवके समय खलीफाके प्रतिनिधिके रूपमें इजीद खुरासानमें रहता था और खलीफा वलीदकी विजयिनी सेना गङ्गातीर तक चली आई थी। इसके अतिरिक्त उस समय के अन्य किसी मुसलमान नृपतिका हाल किसी ग्रन्थमें नहीं देख पड़ता। इससे जान पड़ता है कि इजीद वा कासिम वा

* वर्णित है कि उक्त लड़ाईके समय महाराज माणिकरायका बालक पुत्र "लोट" दुर्गकी दीवारके ऊपर खेल रहा था। शत्रुओंकी ओरसे किसी व्यक्तिने एक तीर मारकर उसे मार डाला। राजकुमार लोटके पांवोंमें उस समय एक प्रकारका चांदीका गहना था; चौहान लोग तबसे वह गहना नहीं पहनते।